इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

विषय सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है)

दो शब्द

इनसान के सामने जब कोई बड़ा काम होता है तो उसको अंजाम देने के लिए तैयारी करनी होती है जिसे आम बोलचाल में ट्रेनिंग कहा जाता है।

हमारे पैदा करनेवाले ख़ुदा ने हम इनसानों को एक उच्च और महान मक़सद के लिए दुनिया में भेजा है। और वह यह है कि हम इस दुनिया में अपने पैदा करनेवाले ख़ुदा की मरज़ी पूरी करें और उसकी हिदायतों को अमलीजामा पहनाएँ। इस मक़सद की तफ़्सीलात हमें क़ुरआन और हदीस में स्पष्ट रूप से मिलती हैं। यह मक़सद इतना उच्च और महान है कि जिसे बग़ैर मुनासिब तैयारी के अंजाम नहीं दिया जा सकता। इस तैयारी के सिलसिले में भी अल्लाह की किताब क़ुरआन मजीद और उसके रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की सीरत में वाज़ेह हिदायतें दी गई हैं। इस महान लक्ष्य को पूरा करने के लिए हमें जो सलाहियतें और सिफ़ात अपने अन्दर पैदा करनी हैं इसी चीज़ को इस्लामी ज़बान में तज़किया-ए-नफ़्स कहा जाता है।

इनसान जब अपने नफ़्स का तज़किया करके इस ज़मीन पर ख़ुदा की मरज़ी पूरी करता है तो वह मरने के बाद की ज़िन्दगी में इसका हक़दार हो जाता है कि ख़ुदा उससे ख़ुश हो और उसे जन्नत में दाख़िल करे।

मौलाना मौदूदी (रह॰) ने इस किताब में बड़े ही वाज़ेह अन्दाज़ में इस बारे में वार्ता की है। तहरीके-इस्लामी से जुड़े हुए लोग ख़ासतौर पर और दूसरे लोग आमतौर पर इस किताब से भरपूर फ़ायदा उठाएँगे हमें इसकी उम्मीद है।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

सेक्रेट्री

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि॰)

इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स

इस्लाम की नज़र में हर व्यक्ति की शख़्सियत का विकास और उसकी ज़ात की तकमील बजाए ख़ुद मतलूब है। दीन व्यक्ति को ही मुख़ातब करता है। ख़ुदा की बन्दगी और फ़रमाँबरदारी की दावत व्यक्ति को ही दी गई है। हुक़ूक़ और फ़राइज़ को अदा करने की ज़िम्मेदारी भी व्यक्ति पर डाली गई है। भलाइयों का हुक्म देने और बुराइयों से रोकने के हुक्म भी व्यक्ति को ही दिए गए हैं। फ़रमाँबरदारी पर इनाम की उम्मीद व्यक्ति को दिलाई गई है और नाफ़रमानी पर सज़ा की धमकी भी व्यक्ति को ही दी गई है। इस फ़िक्रो-अमल (विचार और कर्म) की दुनिया में व्यक्ति ही वह अस्ल इकाई है जिसको शुरू में अमल करनेवाले की हैसियत से और अन्त में अमल के नतीजे में इनाम या सज़ा पानेवाले की हैसियत से बुनियादी अहमियत हासिल है। उसी की अक़्ल और जज़्बात को इस्लाम अपील करता है, उसी को अपनी हिदायत और रहनुमाई का मुख़ातब बनाता है, उसी की कामयाबी का यह तालिब है और उसी को घाटे से बचाना चाहता है। अगर व्यक्ति अपनी जगह नामुकम्मल और नाक़िस रह जाए और वह अपनी शख़्सियत को पस्ती में गिरा दे तो आख़िरी फ़ैसले में उस जमाअत और इज्तिमाई निज़ाम की ख़ूबी उसके लिए कुछ भी लाभदायक नहीं हो सकती, जिससे वह दुनिया में सम्बन्ध रखता था। बल्कि अगर वह किसी अच्छी जमाअत और अच्छे इज्तिमाई निज़ाम से जुड़ा हुआ था और फिर उसने अपनी ज़ात की तकमील और शख़्सियत की तरक़्क़ी के उन मौक़ों से फ़ायदा न उठाया जो उसे हासिल थे तो यह चीज़ उसके ख़िलाफ़ एक और ताक़तवर दलील बन जाएगी और उसे और ज़्यादा घाटे में डाल देगी। इसके बरख़िलाफ़ अगर वह अपनी कोशिश से उस कमाल को पहुँच जाए, जिसको पहुँच सकता था और अपनी शख़्सियत को इतनी बेहतर तरक़्क़ी दे जितनी दे सकता था तो जमाअत और इज्तिमाई निज़ाम का बिगाड़ उसकी कामयाबी और नजात में रुकावट नहीं बन सकते। बल्कि यह चीज़ उसके हक़ में एक दलील होगी कि उसने मुख़ालिफ़ हालात में तरक़्क़ी के लिए इतनी कामयाब जिद्दोजुहद की। यही हैं क़ुरआन मजीद की इस आयत के मानी—

"ऐ लोगो! जो ईमान लाए हो, अपनी फ़िक्र करो, किसी दूसरे की गुमराही से तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता, अगर तुम ख़ुद सीधे रास्ते पर हो।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत : 105)

और इसके बरखिलाफ़ इस बात की तस्दीक़ (पुष्टि) भी उपरोक्त आयत से होती है कि किसी दूसरे का सीधे रास्ते पर होना तुम्हें कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता अगर तुम गुमराही पर हो।

व्यक्ति और जमाअत

इसका मतलब यह नहीं कि जमाअत और इज्तिमाई निज़ाम की इस्लाह इस्लाम की निगाह में कोई अहमियत नहीं रखती। अस्ल में इसको बड़ी अहमियत हासिल है। मगर इस हैसियत से नहीं कि वह बजाए ख़ुद मतलूब है, बल्कि इस हैसियत से कि व्यक्ति की शख़्सियत का विकास और उसके जौहरे-ज़ात (व्यक्तित्त्व की मूल आत्मा) की तकमील जमाअत ही की इस्लाह और इज्तिमाई निज़ाम की बेहतरी पर निर्भर है। अल्लाह ने इनसान को अलग-अलग व्यक्ति के रूप में पैदा तो ज़रूर किया है मगर व्यक्ति-व्यक्ति अलग रहें ऐसा नहीं किया है। पैदा होने से पहले ही इज्तिमाई (सामूहिक एवं सामाजिक) ज़िन्दगी के बहुत से प्रभाव जो उसकी माँ और उसके बाप ने अपने अन्दर समोए थे, विरासत में मिलनवाली सिफ़ात और ख़ुसूसियत की सूरत में उसके अन्दर पेवस्त हो चुके होते हैं और वे उसकी शख़्सियत के विकास पर अच्छा ख़ासा असर डालते हैं और इज्तिमाई ज़िन्दगी उसके पैदा होने की घड़ी से लेकर मौत की घड़ी तक लगातार उसपर असर डालती और उससे असर क़बूल करती रहती है। अगर इज्तिमाई माहौल किसी ग़लत निज़ाम पर क़ायम हो, उसकी आबो-हवा इस्लाह के बजाए बिगाड़ को परवरिश करनेवाली हो, उसकी ज़मीन भलाई के बजाए बुराई के लिए साज़गार हो तो इन हालात में अधिकतर व्यक्तियों की ज़ात की तकमील मुश्किल बल्कि नामुमकिन है। यहाँ तक कि कभी-कभी इस माहौल में वह हालत पैदा हो जाती है जिसे देखकर एक महान पैग़म्बर पुकार उठता है कि—

"...इन इनकार करनेवालों में से कोई ज़मीन पर बसनेवाला न छोड़। अगर तूने इनको छोड़ दिया तो तेरे बन्दों को गुमराह करेंगे

और इनकी नस्ल से जो भी पैदा होगा बदकार और बड़ा इनकार करनेवाला ही होगा।" (क़ुरआन, सूरा-71 नूह, आयत-26-27)

इसलिए यह बहुत ही ज़रूरी है कि जमाअत को दुरुस्त और इज्तिमाई निज़ाम को पाक किया जाए ताकि ज़्यादातर इनसानों के लिए साज़गार (अनुकूल) माहौल पैदा हो, जिसमें उनकी शख़्सियतें सही परवरिश पा सकें। हराम की रोटी, जिससे परवरिश पाए हुए गोश्त-पोस्त के लिए जन्नत हराम है और जिसके हक़ में सच्चे नबी (मुहम्मद सल्ल॰) ने ख़बर दी है कि दोज़ख़ की आग ही उसके लिए सबसे बढ़कर है, आख़िर कोई व्यक्ति उससे कैसे बचे और हलाल रोज़ी कहाँ से पाए जबकि ग़लत निज़ामे-मईशत (अर्थ-व्यवस्था) ने आजीविका के सारे स्रोतों को गन्दा कर दिया हो? जिहालतकाल के आचरण, जिनकी वजह से इनसान हमेशा के नुक़सान में पड़ सकता है, आख़िर कोई शख़्स इनसे किस तरह महफ़ूज़ रहे जबकि सभ्यता, समाज और शिक्षा सबपर जाहिलियत पूरे ज़ोर के साथ छाई हुई हो और इसका ज़हर ज़हरीली महामारी की तरह सारे इज्तिमाई माहौल में फैल गया हो? अल्लाह और रसूल (सल्ल॰) की नाफ़रमानी के साथ किसी कमाल को हासिल करने और किसी व्यक्तित्व के विकास का तसव्वुर ही नहीं किया जा सकता आख़िर कोई शख़्स इससे कहाँ तक बच सकता है जबकि एक ख़ुदा के इनकार पर आधारित सियासी निज़ाम ने पूरा क़ब्ज़ा हासिल करके पूरी-पूरी क़ौमों को कुफ़्र और ज़ुल्म और फ़साद की ख़िदमत पर मजबूर कर दिया हो? इसलिए किसी शख़्स की नजात और कामयाबी बहुत मुश्किल, बल्कि नामुमकिन है अगर उसकी तरक़्क़ी और तकमील के रास्ते से उन मुश्किलों को दूर न किया जाए जो एक बिगड़े हुए और फ़ासिद इज्तिमाई निज़ाम की वजह से पैदा होती हैं और एक ऐसा नेकी और भलाई पर आधारित इज्तिमाई निज़ाम न क़ायम कर दिया जाए जो इस तकमील और तरक़्क़ी में मददगार हो।

सामाजिकता : व्यक्ति की इम्तिहानगाह

यह इस मामले का एक पहलू है और इसी का दूसरा पहलू यह है कि अल्लाह ने इनसान की तरक़्क़ी और तकमील का रास्ता ही इज्तिमाई ज़िन्दगी के अन्दर रखा है न कि इसके बाहर। शख़्स की वह इम्तिहानगाह

जिसमें उसे अपनी योग्यता या अयोग्यता साबित करनी है और जिसकी कामयाबी या नाकामी ही पर आख़िरत में उसकी कामयाबी और नुक़सान का दारोमदार है, किसी एकान्त या किसी सुनसान जंगल में स्थित नहीं है बल्कि समाजी ज़िन्दगी के ठीक मँझधार में स्थित है। व्यक्ति को अकेला नहीं रखा गया है, बल्कि दूसरे इनसानों के साथ बहुत से अनगिनत ताल्लुक़ात के रिश्तों में बाँध दिया गया है। वह किसी का बेटा, किसी का भाई, किसी का शौहर, किसी का बाप, किसी का दोस्त, किसी का दुश्मन, किसी का हमसाया, किसी का मालिक, किसी का ग़ुलाम, किसी का ख़रीदार, किसी का बेचनेवाला, किसी का अमीन, किसी का अमानतदार बनाया गया है और उसका इम्तिहान ही इस बात में है कि इन सब सम्बन्धों में बँधकर ज़िम्मेदारियों और अमानतों के बोझ से लदकर, ख़ौफ़ और लालच, मुहब्बत और ग़ज़ब, उम्मीदों और मायूसियों के माहौल में रहकर वह किस तरह अल्लाह के ठहराए हुए हुक़ूक़ और फ़राइज़ को अदा करता है, किस तरह उसकी ठहराई हुई हदों पर क़ायम रहता है, किस तरह ख़िलाफ़त के इस पद को निभाता है जो उसके सुपुर्द किया गया है। किन गुणों को इख़्तियार करता है, किन ख़ुसूसियतों को अपने अन्दर परवान चढ़ाता है और अपनी सीरत और किरदार के कैसे नक़्श दुनिया में छोड़कर जाता है। नेकी का तसव्वुर जो इस्लाम पेश करता है वह बेमानी हो जाता है, अगर शख़्स को समाजी ज़िन्दगी से अलग कर लिया जाए। जिस शख़्स ने तमद्दुनी (सांस्कृतिक) ताल्लुक़ात के जितने कम विभागों में क़दम रखा है और जितनी कम ज़िम्मेदारियाँ ली हैं, उसने मानो कि उतने ही कम पर्चों में इम्तिहान दिया है और उसी लिहाज़ से अपनी शख़्सियत को उतने ही पहलुओं में तकमील (पूर्ण करने) के मौक़ों से महरूम कर लिया है। यहाँ तक कि जिसने एकान्त में रहबानियत (संन्यास) की ज़िन्दगी गुज़ारी उसने अपने इम्तिहान के अधिकतर पर्चे सादा पन्नों की सूरत में भेज दिए जिनपर वह सिरे से कोई नम्बर पाने का हक़दार ही नहीं है।

और बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं कि व्यक्ति की शख़्सियत की तकमील समाजी ज़िन्दगी के अन्दर ही हो सकती है बल्कि इससे बढ़कर यह हक़ीक़त

है कि अगर इनसानी समाज की बागडोर नेक और भले लोगों के हाथों में न हो। तो अल्लाह के अधिकतर और बड़े-बड़े अहकाम सिरे से अमल के प्यासे रह जाते हैं। तमद्दुन और सियासत और मईशत (अर्थव्यवस्था) की बागडोर ख़ुदा के बाग़ियों के क़ब्ज़े में होने का मतलब यह है कि ख़ुदा की शरीअत मुअत्तल रहे। उसकी ज़मीन में नेकी के बजाए बिगाड़ फैले, उसकी सृष्टि में भलाइयों का हुक्म देने की जगह बुराइयों का हुक्म दिया जा रहा हो और बुराइयों से रोके जाने के बजाए भलाइयों से रोका जाने लगे। यह वह हालत है जिससे बढ़कर अल्लाह को नापसन्द कोई चीज़ नहीं और किसी शख़्स का इस हालत में रहते हुए यह उम्मीद रखना कि एकान्त के मुराक़बों (ध्यान-ज्ञान) और रियाज़तों (साधनाओं) से या नेकी और तक़वा के कुछ पहलुओं के इज़हार से या उन अहकाम की तबलीग़ से जो हक़ के इनकारियों के लिए नापसन्दीदा न हों, वह तज़किए का मक़ाम हासिल कर लेगा यह उसकी भूल है। अपनी ज़ात और शख़्सियत के विकास का एक ही रास्ता है और वह यह है कि फ़रमाँरवाई के उच्च स्थान से ईश्वर के बाग़ियों को हटाने की कोशिश की जाए और अपनी सारी कोशिशें और सारी कुव्वतें इस मक़सद में लगा दी जाएँ कि ईश्वर के देश में उसका क़ानून जारी हो। उसकी ज़मीन फ़साद व बिगाड़ से पाक होकर नेकी और भलाइयों से भर जाए और उसकी सृष्टि में भलाइयों का हुक्म चले और बुराइयों पर सज़ाएँ दी जाएँ।

इस्लाम का मुतालबा—व्यक्ति से

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समाज और समाजी ज़िन्दगी की इस्लाम में कितनी बड़ी अहमियत है, लेकिन इससे यह भी साबित होता है कि अस्ल अहमियत व्यक्ति को ही हासिल है क्योंकि सामाजिक सुधार की स्थापना और सामाजिक बिगाड़ का अन्त व्यक्ति की कामयाबी के लिए ही मतलूब अभीष्ट है।

इसके बाद यह कहने की कोई ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती कि फ़िक्रो-अमल (विचार तथा कर्म) के तमाम निज़ामों से बढ़कर इस्लाम व्यक्ति के सुधार और विकास (तज़किए) को महत्व देता है। इसका नज़रिया उन निज़ामों से भी अलग है जो समाज की अनदेखी करके व्यक्ति को अकेला होने की

हैसियत से लेते हैं और समाजी ज़िन्दगी से अलग-थलग रखकर उसको रूहानी इरतिक़ा (आध्यात्मिक विकास) के दर्जे तय करा देना चाहते हैं और उन निज़ामों से भी यह अलग है जो व्यक्ति की व्यक्तिगत हैसियत को नज़रअन्दाज़ करके उसके वुजूद को सिर्फ़ समाज की ख़ातिर अहमियत देते हैं और लोगों को सिर्फ़ इसलिए तैयार करना चाहते हैं कि किसी समाजी फ़ायदे को हासिल करने में उनकी तरबियत पाई हुई ताक़तों को इस्तेमाल करना है। इन दोनों नज़रियों से अलग इस्लाम का नज़रिया यह है कि इनसानी नस्ल का एक-एक शख़्स अपनी व्यक्तिगत हैसियत में ख़ुदा के सामने जवाबदेह है। इसलिए हर शख़्स को एक-एक करके ख़ुदा के सामने उसकी जवाबदेही बहुत बड़ी हद तक समाजी हुक़ूक़, फ़राइज़ और ज़िम्मेदारियों ही से सम्बन्धित है, और आख़िरी इम्तिहान की कामयाबी के लिए उसका तैयार होना बजाए ख़ुद भी समाजी भलाई और कामयाबी पर निर्भर है और ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करने में वह कामयाब नहीं हो सकता जब तक वह अपनी ताक़त भर फ़साद और बिगाड़ को मिटाने और ख़ुदा के अहकाम उसकी ज़मीन और उसके बन्दों पर जारी करने का वह फ़र्ज़ अंजाम न दे जो ख़लीफ़ा होने की हैसियत से उस पर आइद किया गया है। इसलिए शख़्स की तैयारी सिर्फ़ अपनी निजी इस्लाह व सुधार ही की हद तक न होनी चाहिए बल्कि इस दर्जे की होनी चाहिए कि वह बिगाड़ पर आधारित निज़ामों से लड़ सके और एक अच्छाई और भलाई पर आधारित निज़ाम को क़ायम करने और क़ायम रखने का बलबूता उसमें पैदा हो जाए।

मगर सदियों की पस्ती से मुसलमानों के अन्दर जहाँ और बहुत-से बदलाव आए हैं, तज़किया-ए-नफ़्स के बारे में भी उनका तसव्वुर अस्ल इस्लामी तसव्वुर से बहुत कुछ मुख़्तलिफ़ हो गया है। उनके मक़सद में भी बदलाव आ गया है। दृष्टिकोण भी महदूद हो गया है और तज़किया-ए-नफ़्स के तरीक़े भी उन तरीक़ों से मुख़्तलिफ़ हो गए हैं, जो नुबूवत के दौर में इख़्तियार किए गए थे। इसका नतीजा है कि तज़किया-ए-नफ़्स के बड़े-बड़े इदारे और सिलसिले मुद्दतों से क़ायम हैं लेकिन उनकी मौजूदगी ही में जाहिलियत अपनी तलवार से, अपने क़लम से, अपने उलूम व फ़ुनून (ज्ञान

एवं कला) से, अपनी तहज़ीब और अपने तमद्दुन (सभ्यता एवं संस्कृति) से न सिर्फ़ दुनिया को बल्कि ख़ुद मुसलमान मुल्कों और क़ौमों को भी फ़तह करती चली गई है और चली जा रही है। आख़िर इस कमज़ोरी की वजह तो ज़रूर है, और जो भी वजह हो उसकी तहक़ीक़ में बेजा अक़ीदत रुकावट न होनी चाहिए।

हमारे यहाँ एक बड़े गरोह के नज़दीक तज़किया-ए-नफ़्स का मक़सद यह रहा है कि इसी ज़िन्दगी में हक़ का मुशाहिदा यानी हक़ को खुली आँखों से देखना नसीब हो जाए और ग़ैब पर ईमान से तरक़्क़ी करके ईमान-बिश्शहादह (आँखों देखे ईमान) की दौलत हासिल हो। ज़ाहिर नज़र में यह एक बुलन्दतरीन मक़सद है। लेकिन क़ुरआन ने कहीं हमको यह तालीम नहीं दी कि हम उसे मक़सूद ठहराकर अपनी ज़िन्दगी उसके लिए वक़्फ़ कर दें, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ अगर हम ख़ुद इसे मक़सूद ठहरा भी लें तो क़ुरआन हमें यक़ीन दिलाता है कि यह गौहरे-मक़सूद (क़ीमती हीरा) इस ज़िन्दगी में नबी (सल्ल॰) के सिवा किसी के हाथ नहीं आ सकता।

ग़ैब की हक़ीक़तों का जाननेवाला अल्लाह है और वह अपने ग़ैब पर किसी को ख़बर नहीं देता, सिवाए उस रसूल के जिसको उसने ख़ुद चुना हो, फिर वह उसके आगे और पीछे निगरानी करनेवाले फ़रिश्ते लगा देता है यह मालूम करने के लिए कि इन रसूलों ने अपने रब के पैग़ाम पहुँचा दिए।

हक़ीक़त में इनसान को इन सच्चाइयों के जितने और जिस क़द्र इल्म की ज़रूरत थी, अल्लाह ने वह इल्म अपने रसूलों के ज़रिए से दे दिया है और यह अल्लाह का बड़ा एहसान है कि इस तरह उसने इनसान को उन चीज़ों की तलाश और जुस्तजू की परेशानी से बचा दिया। अब इनसान का काम यह है कि वह रसूलों के दिए हुए ईमान-बिल-ग़ैब के इल्म पर ईमान लाए और जो ख़िदमात उसके सिपुर्द की गई हैं उन्हें इत्मीनान के साथ अंजाम दे।

इस तज़किया-ए-नफ़्स का मक़सद रूहानी तरक़्क़ी भी बताया जाता है। मगर यह रूहानी तरक़्क़ी कुछ ऐसी ग़ैर-वाज़ेह और रहस्यमय चीज़ है कि तमाम उम्र इस भूल-भुलैया में चक्कर लगाने के बाद भी आदमी को कुछ मालूम नहीं होता कि वह किस मक़ाम पर पहुँचा। उसकी इस्तिलाहें

(परिभाषिक शब्द), उसकी मन्ज़िलें, उसके फल और नतीजे सब रहस्य हैं, जिनको हम जैसे आम लोग कुछ नहीं समझ सकते। हमें अगर कुछ नज़र आता है तो वह सिर्फ़ यह कि इस राह में जो मन्ज़िलें तय की जाती हैं, उनमें वह मन्ज़िल कभी नहीं आती जिसे हज़रत बिलाल, अम्मार और सुहैब (रज़ि०) ने तय किया था और न वह मन्ज़िल कभी आने की उम्मीद की जा सकती है जिसको हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) और उमर (रज़ि०) ने तय किया था।

इस्लाम के मक़सद से सबसे ज़्यादा क़रीब मक़सद उन लोगों का है जो तज़किया-ए-नफ़्स से तक़वा को हासिल करना चाहते हैं। लेकिन यहाँ एक दूसरी मुसीबत पेश आ जाती है और वह यह कि तक़वा के बारे में आमतौर से लोगों का नज़रिया बहुत महदूद (सीमित) होकर रह गया है। इसमें कुछ मज़हबी अमल की पाबन्दी करने और रोज़मर्रा की इबादतों से कुछ ज़्यादा इबादत कर लेने से तक़वा का अमल पूरा हो जाता है। इस महदूद तसव्वुर में व्यापक (फैले हुए) समाजी मामलों के फ़हम और सूझ-बूझ की कोई गुंजाइश नहीं होती।

यह अमल की वह दुनिया है जहाँ हर तैयारी ख़ुद मक़सद की नौइयत से तय होती है

क़ायदे की बात यह है कि इनसान तैयारी उस मक़सद की मुनासिबत से ही किया करता है जो उसके सामने हो। तैयारी अपने-आप में ख़ुद कोई मानी नहीं रखती। वह हमेशा किसी-न-किसी मक़सद के लिए होती है। मक़सद की नौइयत ही उसकी नौइयत तय करती है। मक़सद की वुसअत या महदूदियत के लिहाज़ से ही उसका पैमाना फैलता या महदूद होता है और मक़सद ही का मिज़ाज तैयारी के मुमकिन तरीक़ों में से ज़्यादा मुनासिब तरीक़े का इन्तिख़ाब करता है। कभी-कभी मुख़्तलिफ़ मक़सदों के लिए बड़ी हद तक एक ही तरह की तैयारी करनी पड़ती है। क्योंकि इनमें से हर मक़सद के लिए वे ज़रूरी होती हैं। लेकिन इस ज़ाहिरी समानता के अन्दर गहरी और व्यापक निगाह से देखा जाए तो साफ़ महसूस किया जा सकता है कि भिन्न-भिन्न मक़सदों की मिलती-जुलती तैयारियों में भी हर मक़सद की रूह

अपनी अलग शान के साथ काम कर रही होती है और शुरू के मरहलों से गुज़रकर आख़िरी मरहले जितने-जितने क़रीब आते जाते हैं, उन तैयारियों के रास्ते बिलकुल एक-दूसरे से अलग और दूर होते चले जाते हैं।

मिसाल के तौर पर देखिए, हथियार बनाना एक तरह की तैयारी है। आप चाहे किसी भी मक़सद से हथियार बनाएँ, लेकिन हर हाल में बनाने के कुछ तरीक़े आपको वही इख़्तियार करने होंगे जो किसी दूसरे मक़सद के लिए हथियार बनानेवाला इख़्तियार करता है। लेकिन शुरू ही से वह मक़सद जिसके लिए आप हथियार बना रहे हैं, आपकी इस तैयारी के पैमाने और उसकी नौइयत और उसके तरीक़ों को उन दूसरे लोगों की तैयारियों से अलग कर देगा जो दूसरे मक़सदों के लिए यही काम कर रहे हों। मान लीजिए कि आप सिर्फ़ एक फ़ाइन आर्ट की हैसियत से ख़ूबसूरत हथियार तैयार करना चाहते हैं जिससे आपका मक़सद सिर्फ़ अपने और अपनी जैसी ज़हनियत रखनेवालों की अच्छी पसन्द को तसकीन देना है। एक दूसरा शख़्स पेशावर हथियार बनानेवाला है और एक तीसरा शख़्स इसलिए हथियार बनाता है कि उसे एक फ़ौज तैयार करनी है और इन हथियारों से कोई जंगी मक़सद हासिल करना है। इन तीन अलग-अलग मक़सदों के लिए आप और वे दोनों हथियार बनाने के बहुत से समान तरीक़े इख़्तियार करेंगे, लेकिन तीनों के मक़सदों का अलग-अलग होना पहले क़दम ही से तीनों की राहें अलग कर देगा और मुकम्मल होने के मरहलों की तरफ़ जितना-जितना क़दम आगे बढ़ेगा ये राहें एक-दूसरे से दूर से दूरतर होती चली जाएँगी।

फ़ाइन आर्ट की हैसियत से आप जो हथियार बनाएँगे, उसमें आपके लिए तरह-तरह की ख़ूबसूरत तलवारें और बन्दूक़ें बनाना अपने आप में एक मक़सद होगा। किसी दूसरे मक़सद के लिए उनको औज़ार और ज़रिआ बनाने का सवाल न होगा। आपकी निगाह में अस्ल अहमियत हथियार की नफ़ासत, ख़ुशनुमाई और सुथराई की होगी। चाहे वह लड़ाई के मैदान में अपनी काट और मार के लिहाज़ से बिलकुल नाक़िस और बेकार ही क्यों न साबित हों। आप हथियार बनाने के तरीक़ों में से सिर्फ़ उन्हीं तरीक़ों को इख़्तियार करेंगे जिनसे नाज़ुक-से-नाज़ुक और ख़ूबसूरत-से-ख़ूबसूरत हथियार

बन सकें और अजूबा दिखाकर हर साहिबे-ज़ौक़ से तारीफ़ें सुनें। उन तरीक़ों की तरफ़ तो नज़र उठाकर देखना भी आपको गवारा न होगा जिनसे भारी-भरकम, हौलनाक और भयानक और क़िलों को तोड़ डालनेवाले हथियार और मैदान में मार करनेवाले हथियार बना करते हैं। आपकी तलवारें इसलिए न होंगी कि सफ़ों को उलट दें बल्कि इसलिए होंगी कि हवा में रेशमी रूमाल काट दें। आप आग बरसानेवाले हथियार आग बरसाने के लिए नहीं बल्कि आतिशबाज़ी के लिए बनाएँगे। आपकी तोप इसलिए न होगी कि मैदान जीते बल्कि इसलिए होगी कि इसका गोला आसमान पर जाकर फटे और रंग-बिरंग के फूल बरसाए। फिर आपके इस कारख़ाने की कशिश भी उन ख़रीदारों को न खींचेगी जिन्हें लड़ने के लिए हथियार दरकार हैं, बल्कि खींचेगी उन ख़ुशज़ौक़ लोगों को जो लड़ाई-भिड़ाई से कोई दिलचस्पी नहीं रखते, सिर्फ़ आपकी तरह आर्ट के दीवाने हैं। वे आपके बनाए हुए हथियार हाथों-हाथ लेंगे और उन्हें ख़ूबसूरत ग़िलाफ़ों में लपेटकर अपने कमरे की ज़ीनत (शोभा) बनाएँगे। ज़्यादा-से-ज़्यादा अगर कोई काम उन्होंने उन हथियारों से लिया भी तो बस यह कि कुछ निशानेबाज़ी की मश्क़ कर ली, कुछ तलवार के हाथ साफ़ कर लिए, कभी कोई जानवर मार लिया और कभी तमाशाइयों के मज्मे में सिपहगरी के कमाल दिखाकर तारीफ़ें सुन लीं।

रहा पेशावर हथियार बनानेवाला तो वह अच्छे-से-अच्छे हथियार बनाकर सरे-बाज़ार रख देगा कि जिसका जी चाहे क़ीमत दे और ख़रीद ले जाए। उसकी तलवार उसके अपने काम की न होगी। ख़रीदार के काम की होगी। वह उसको तेज़ करेगा और ख़रीदार उसकी काट से फ़ायदा उठाएगा। हर क़िस्म के ख़रीदारों की ज़रूरतों के लिए उसके कारख़ाने में हर क़िस्म के हथियार मिलेंगे। शिकारी शिकार के लिए, डाकू डाका डालने के लिए, जहाँगीर दुनिया को फ़तह करने के लिए, मुजाहिद हक़ की राह में जिहाद के लिए वहाँ से हथियार पा लेगा। वह ख़ुद किसी ख़ास मक़सद का ख़ादिम न होगा बल्कि मक़सद दूसरों के होंगे। इस बेमक़सद हथियार बनाने का असर लाज़िमी तौर पर हथियार बनाने के तरीक़ों पर भी पड़ेगा। फ़न (कला) के मालूम और जाने-पहचाने तरीक़े तो पूरी महारत के साथ उस कारख़ाने में

इस्तेमाल किए जाएँगे, लेकिन जंग के मैदान में काम आने के लिए हथियारों में जिन अमली ख़ुसूसियतों की ज़रूरत होती है, उन्हें पैदा करने का तरीक़ा इस पेशावर फ़नकार को सिरे से मालूम ही न होगा। उसका हाल वही होगा जो पिछले विश्व-युद्ध में अमरीका के हथियार बनानेवाले कारख़ानों का था कि बाज़ार के चलते हुए हथियार तो वे ख़ूब बना सकते थे मगर जंग के मैदान के अमली तजरिबों से जंगी क़ौमों ने हथियार बनाने में जो कमालात पैदा किए थे उनकी हवा तक उन पेशावर हथियार बनानेवालों के माल को न लगी थी। जैसा कि मिस्टर लॉयड जॉर्ज ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पहले विश्व-युद्ध में अमरीका के हथियार अपनी चमक-दमक और शान और नफ़ासत से निगाहों को हैरत में डाल देते थे, मगर मैदान की इम्तिहानगाह में नाकाम साबित होते थे।

इसके बरख़िलाफ़ जो शख़्स हथियार इसलिए बनाता है कि उसके सामने एक जंगी मक़सद है जिसके लिए वह अपनी फ़ौज को अपने ही हथियारों से सुसज्जित करना चाहता है, उसका मामला आपके और उस पेशावर हथियार बनानेवाले के मामले से बिलकुल अलग होगा। ढलाई और सैक़लगरी (चमक पैदा करना) और आतिशकारी के शुरुआती उसूल इसके यहाँ भी वही होंगे जो एक आर्टिस्ट और पेशावर के यहाँ होंगे। मगर हथियारों का इस्तेमाल इसके यहाँ बिलकुल अलग तौर पर होगा। इसको हथियार की नफ़ासत और ख़ुशनुमाई की इतनी परवाह न होगी जितनी कि तेज़ धार और काट-मार की होगी। कोई हथियार चाहे कितना ही ख़ुशनुमा हो, अगर मैदान की आज़माइश में पूरा न उतर सके तो वह उसके किसी काम का न होगा। अलबत्ता भौंडे से भौंडा हथियार भी उस आज़माइश में पूरा उतर सके तो उसकी नज़र में बहुत ही पसन्दीदा ठहरेगा। उसे अद्भुत और विचित्र दिखनेवाले अनोखे हथियारों की ज़रूरत न होगी। बस कारगर हथियार मतलूब होंगे। उसे वह तोप दरकार होगी जिसका गोला क़िलों को धराशाई कर दे, चाहे उससे फूल एक भी न झड़े। उसको वह तलवार पसन्द होगी जो दुश्मन के अन्दर कन्धे से कमर तक उतर जाए, चाहे चमक का नाम भी उसमें न हो और हवा के रूमाल का एक तार भी न काट सके। इन

ख़ूबियों के साथ अगर सुथराई और नफ़ासत और ख़ुशनुमाई भी हो तो क्या कहने का। ख़ूबसूरत मगर खोटे हथियारों के मुक़ाबले में भौंडे मगर कारगर हथियारों को वह हज़ार दर्जे तरजीह देगा। फिर वह हथियार बनाने के आम तरीक़ों का भी ग़ुलाम न होगा। बल्कि मैदान के तजरिबों पर उन्हें परखेगा और उन तजरिबों की रौशनी में कारीगरी के उसूलों को ज़्यादा-से-ज़्यादा बेहतर तरीक़ों से इस्तेमाल करने की कोशिश करेगा चाहे वह फ़न के राइज तरीक़ों के बिलकुल ख़िलाफ़ ही क्यों न हों। फिर उनका मक़सद ही यह निश्चित करेगा कि हथियार बनाने के उसूल पर जिन क़िस्मों के हथियार बनने मुमकिन हैं, उनमें से किस तरह के हथियार बनाए और किस तरह के न बनाए। बहुत-से वे हथियार जो फ़ाइन आर्ट के मक़सद के लिए या पेशेवर की दुकान के लिए ऐन मतलूब हैं, सिरे से उसके कारख़ाने की स्कीम में जगह ही न पाएंगे। और बहुत से उन हथियारों को उसके यहाँ सबसे पहले जगह मिलेगी जिन्हें बनाने की ज़रूरत न फ़नकार महसूस करता है न पेशावर। फिर वह एक लम्हे के लिए भी इस बात की कल्पना तक न कर सकेगा कि अपने बनाए हुए हथियार अपने दुश्मनों के हाथ बेच दे। फ़नकार अपने फ़न में मग्न होता है। उसका किसी जंग या युद्ध से कोई ताल्लुक़ नहीं होता कि कोई उसका दोस्त या दुश्मन हो। पेशेवर हर ख़रीदार का मोहताज होता है। उसको इससे क्या बहस कि ख़रीदनेवाले उसका बनाया हुआ माल किस मक़सद से ख़रीद रहे हैं। मगर यह जंग का तजरिबा रखनेवाला अस्लिहासाज़ (हथियार बनानेवाला) तो मैदान में दोस्त भी रखता है और दुश्मन भी। इसके लिए तो नामुमकिन है कि अपना एक तीर भी दुश्मन के तरकश में जाता देख सके। जब उसे अन्देशा होता है कि उसका कारख़ाना दुश्मन के हाथ लग जाएगा और उसके ख़िलाफ़ अपना हथियार बनाएगा तो यह ख़ुद उसे अपने हाथ से डायनामाइट लगाकर उड़ा देता है और इस बात की कुछ परवा नहीं करता कि मैंने बरसों की मेहनत और अरबों रुपया ख़र्च करके यह कारख़ाना बनाया था।

जिस तरह हथियार बनाना एक तरह की तैयारी है उसी तरह तज़किया-ए-नफ़्स भी एक तरह की तैयारी ही है। तज़किया के दो मानी हैं। पाक-साफ़

करना और तरक़्क़ी देना (विकसित करना)। इन दोनों मानी के लिहाज़ से तज़किया-ए-नफ़्स का मतलब यह है कि नफ़्स को ग़ैर-मतलूब सिफ़ात (अवांछित गुणों) से पाक किया जाए और मतलूब सिफ़ात की देख-रेख में उसको परवान चढ़ाया जाए। इसलिए हक़ीक़त में तज़किया-ए-नफ़्स और अख़लाक़ी तैयारी दोनों का एक ही मतलब है। अब यह ज़ाहिर है कि जिस तरह दूसरी तमाम तैयारियों के मामले में तैयारी बजाय ख़ुद एक बेमतलब और बेकार चीज़ है उसी तरह यह अख़लाक़ी तैयारी अपने-आप में बेमतलब है जब तक कि यह बात साफ़ तौर पर तय न हो कि तैयारी किस मक़सद के लिए है। मक़सद ही इस बात का फ़ैसला करनेवाली चीज़ है कि कौन-सी सिफ़ात उसके हासिल करने में मददगार हैं जिनको परवान चढ़ाने की कोशिश की जाए। मक़सद ही इस बात को तय करता है कि किस पैमाने का इनसान दरकार है जिसे बनाने की कोशिश की जाए और किस पैमाने के इनसान ग़ैर-फ़ायदेमन्द और नाकाफ़ी हैं जिनके बनाने की या तो कोशिश ही न हो, या जिनके बन जाने पर बस न किया जाए। मक़सद ही की नौइयत पर इस सवाल का फ़ैसला भी निर्भर है कि तज़किया-ए-नफ़्स के तरीक़ों में से कौन-सा तरीक़ा पैमाना-ए-मतलूब के इनसान तैयार करने के लिए ज़्यादा मुनासिब है और तज़किया की तदबीरों में से किन-किन तदबीरों को किस अनुपात (तनासुब) के साथ इस्तेमाल किया जाए कि उस पैमाने के इनसान ढल सकें।

तज़किया-ए-नफ़्स और इनसान का नस्बुलऐन

यह मक़सद का सवाल इस तज़किया-ए-नफ़्स के मामले में इतना अहम है कि न सिर्फ़ तज़किया की नौइयत और उसके पैमाने और उसके तरीक़े ही का उसपर दारोमदार है, बल्कि हक़ीक़त में एक क़िस्म के तज़किए और दूसरी तरह के तज़किए में फ़र्क़ और इम्तियाज़ भी उसी के लिहाज़ से होता है और मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तज़कियों की क़द्रो-क़ीमत इसी बिना पर जाँची जा सकती है।

हथियार बनाने की जो मिसाल अभी हमने ऊपर दी है, अगर आप उसे नज़र में रखें और फिर इस मसले पर ग़ौर करें तो सारा मामला आसानी के

साथ आपकी समझ में आ सकता है। आप इस मिसाल में हथियार की जगह इनसान को रख दें और हथियार बनाने के स्थान पर उसे रखें जो तज़किया से इनसानों को तैयार करना चाहता है। यक़ीनी तौर पर यहाँ भी सबसे पहले वही सवाल पैदा होगा जो हथियार बनाने के मामले में पैदा होता है कि आख़िर किस मक़सद के लिए इनसान तैयार करने मक़सूद हैं? इनसान बनाने का काम आर्ट के नज़रिए से भी हो सकता है। पेशावराना भी हो सकता है। इस मक़सद से भी हो सकता है कि आप दुनिया में ख़ुद कोई स्कीम (योजना) रखते हैं और अपने तैयार किए हुए इनसानों की ताक़त से उसको जारी करके अपने दुनियवी मक़सद को हासिल करना चाहते हैं और इस मक़सद से भी हो सकता है कि आप दुनिया में ख़ुदा की स्कीम को जारी करके ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करना चाहते हैं। इन तमाम अलग-अलग तरह के मक़सदों के लिए जो इनसान बनाने का काम किया जाएगा उसमें बहुत-सी चीज़ें ऐसी होंगी जो सबके लिए ज़रूरी होंगी। लेकिन उन ज़ाहिरी समानताओं के बावजूद मुख़्तलिफ़ क़िस्म के इनसान बनाने के काम के मिज़ाज एक-दूसरे से अलग ही रहेंगे। इसलिए कि मक़सद का अलग होना उनके रास्तों को लाज़िमन अलग कर देगा। जिन सिफ़ात को ग़ैर-मतलूब समझने में ये सब एक मत होंगे उनके ग़ैर-मतलूब होने की वजह हर एक की निगाह में दूसरे से अलग होगी। उनके नापसन्द करने के मर्तबे भी सबके यहाँ एक जैसे नहीं होंगे और उनके सिवा बहुत-सी सिफ़तें ऐसी मिलेंगी जिनको एक के यहाँ सख़्त नापसन्द किया जाएगा और दूसरे के यहाँ नापसन्दीदा गुणों की सूची में सिरे से उनका ज़िक्र तक न मिलेगा। इसलिए न सिर्फ़ यह कि एक जैसे नापसन्द गुणों के सख़्त नापसन्द होने में हर एक का नज़रिया दूसरे से मुख़्तलिफ़ होगा, बल्कि कुल्ली हैसियत से एक के नापसन्द गुण दूसरे के नापसन्द गुणों से भिन्न पाए जाएँगे। यही सूरते-हाल सिफ़ाते-मतलूबा (वांछित गुणों) के मामले में आप देखेंगे कि सिफ़ात के मतलूब होने की वजह इन सबके नज़दीक अलग-अलग होगी, उनको जो कुछ मतलूब है और जिनकी वे तारीफ़ें करते हैं उनके मर्तबों में भी उनके दर्मियान इत्तिफ़ाक़ न होगा, और एक की सिफ़ाते-मतलूबा (वांछित गुणों) का मजमूआ दूसरे के

मजमूए से न मिलेगा। इसी तरह आप देखेंगे कि उन तदबीरों में भी ये लोग समान रूप से अपनाएँगे, उनमें हर एक के यहाँ दूसरे से मुख़्तलिफ़ रूह काम कर रही होगी, उनकी अहमियत के दर्जों में भी इख़्तिलाफ़ होगा और मजमूई हैसियत से एक का इनसान बनाने का निज़ाम अपनी तरकीब अपनी तदबीरों के अनुपात में दूसरे के निज़ामे-इनसान से बिलकुल अलग होगा।

इनसान बनाने का काम हालाँकि नाम के एतिबार से एक ही चीज़ है। लेकिन देखिए ग़रज़ और मक़सद के इख़्तिलाफ़ से मुख़्तलिफ़ क़िस्मों के इनसान बनानेवालों में कितना बड़ा इख़्तिलाफ़ हो जाता है। अब दूसरा सवाल यह पैदा होता है कि तज़किया-ए-नफ़्स के इन मुख़्तलिफ़ स्कूलों में हम फ़र्क़ कैसे करेंगे और किस तरह यह तय करेंगे कि इनमें से कौन सिर्फ़ आर्टिस्ट है, कौन पेशावर है और कौन दुनिया में अपनी स्कीम चलाने के लिए जिद्दोजुहद करना चाहता है, और कौन ख़ुदा की स्कीम जारी करने के लिए कोशिश और अमल के मैदान में उतरना चाहता है? यह फ़र्क़ और इम्तियाज़ ज़ाहिर है कि दो ही तरीक़ों से हो सकता है। एक यह कि हम हर स्कूल के तज़किए के निज़ाम का जायज़ा लें। दूसरे यह कि हम हर स्कूल के काम करने के तरीक़े को देखें।

ज़िन्दगी की ज़िम्मेदारियों से बचकर

आर्टिस्ट की इम्तियाज़ी सिफ़त यह होती है कि ख़ुश-ज़ौक़ी (सुरुचि), हुस्न, लताफ़त (कोमलता), ऐसे कमालात जो अपने अन्दर बड़े मानी और मतलब रखते हैं, अजीब चीज़ों का ज़ाहिर होना और ऐसी ख़ूबसूरती का दिखाई देना जो अपने अन्दर मानी व मतलब रखती हो, उसके निज़ाम की बुनियादी क़द्रें होती हैं। इसलिए आर्टिस्ट के नज़रिए से तज़किया-ए-नफ़्स के जितने स्कूल क़ायम होंगे, उनमें लाज़िमी तौर पर यही चीज़ें ज़्यादा नुमाया होंगी। उनके यहाँ नापसन्दीदा सिफ़ात की सूची इस लिहाज़ से मुरत्तब होगी कि जो सिफ़ात आर्ट के नज़रिए से जितनी ज़्यादा नापसन्दीदा हैं उनके दूर करने पर उतना ही ज़ोर दिया जाएगा। तहारत (स्वच्छता), पाकीज़गी, लताफ़त, आदाब (एटीकेट्स) फ़ैशन और इसी नौइयत की दूसरी चीज़ों में

मुक़र्रर ज़ाब्तों में मामूली कमी को भी वे बड़े गुनाहों में गिनेंगे। जिन सिफ़तों से उनके नज़दीक रूह की परवाज़ में फ़र्क़ आता है, या जो सिफ़ात लताइफ़ (कोमल रहस्यों) के खुलने में रुकावट होती हैं, या जिनसे ऐसे कमालात हासिल नहीं हो सकते जो अपने अन्दर बड़े मानी व मतलब समाए हुए होते हैं, वे उनके यहाँ अस्ल नापसन्दीदा सिफ़ात क़रार पाएँगी। इसी तरह पसन्दीदा सिफ़ात में भी आप उनकी पूरी फ़ेहरिस्त पर आर्ट को मुसल्लत पाएँगे। आपको साफ़ तौर पर महसूस होगा कि उनको ज़्यादातर दिलचस्पी ज़िन्दगी के हुस्न से है और इससे आगे बढ़कर अगर ये कुछ चाहते हैं तो सिर्फ़ वे अख़लाक़ी ख़ूबियाँ जिनसे नफ़्स में लतीफ़ क़ुव्वतें पैदा हों, आलमे-बाला (ऊपरी लोक) की तरफ़ उड़ान की ताक़त आए और माद्दियत (भौतिकता) से परे लज़्ज़तों को महसूस करने की सलाहियत परवान चढ़े। मानो वे एक नाज़ुक-सा रेडियो सेट बनाना चाहते हैं जो बहुत ही मुतनासिब (यथोचित) और देखने में ख़ूबसूरत भी हो और लतीफ़-से-लतीफ़ आवाज़ों को पकड़ भी ले या एक ख़ूबसूरत केमरा बनाना चाहते हैं जो साफ़ सुथरा भी हो और जिसकी प्लेट पर निहायत लतीफ़ सूरतों (रूपों) का चित्र खिंच सके। इनके लिए दुनिया में करने का कोई काम ऐसा नहीं है जिसकी ख़ातिर उन्हें बाहर की ताक़तों से कशमकश और मुक़ाबला पेश आए, जिसमें ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने की ताक़त दरकार हो, जिसमें तमद्दुन, मुआशरत (सामाजिकता), सियासत और तहज़ीबे-अफ़कारो-आमाल (विचार एवं कर्मों की संस्कृति) के मामलों से उन्हें दो-चार होना पड़े और किसी सकारात्मक योजना को ज़हमतों, रुकावटों और विरोधों के होते हुए लागू करने की ज़रूरत हो। इसलिए वे पसन्दीदा सिफ़ात के इस पूरे विभाग का नोटिस तक नहीं लेते जो दुनिया के जंगी मैदान में एक तय किए हुए मक़सद लेकर उतरनेवाले के नुक़्ता-ए-नज़र से मतलूब या ग़ैर-मतलूब हुआ करती हैं। उन्हें इमारत की मज़बूती से बहस नहीं, सिर्फ़ उसकी ज़ीनत, उसके तनासुब और उसके रंग और रोग़न और नक़्श और निगार से बहस है। उनको सीरत का ज़ोर और उसकी पुख़्तगी मतलूब नहीं, सिर्फ़ उसका हुस्न मतलूब है। उनको नफ़्स की वे ज़बरदस्त ताक़तें दरकार नहीं जिनसे वे दुनिया में भारी ज़िम्मेदारियों को संभालने और बड़े काम अंजाम देने के लिए तैयार हों, बल्कि वे लतीफ़

कुव्वतें मतलूब हैं जिनसे वह कश्फ़े-सुदूर (सीनों का हाल), कश्फ़े-क़ुबूर (क़ब्रों का हाल), इदराके-लताइफ़े-ग़ैबी (ग़ैब की बातें जानने) और इसी तरह की दूसरी चीज़ों पर क़ादिर हो जाएँ। इसी लिए वे तज़किया की तदबीरों में से सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों को इख़्तियार करते हैं जो उनके इस मक़सद के लिए मुनासिब होती हैं। मुसलमान आर्टिस्ट हों या ग़ैर-मुस्लिम आर्टिस्ट सबका मक़सद इन तदबीरों से बस एक ही है और सबके यहाँ इन तदबीरों का मिज़ाज एक जैसा है। फ़र्क़ अगर है तो सिर्फ़ यह है कि मुसलमान आर्टिस्ट इन तदबीरों का इन्तिख़ाब इस्लामी तदबीरों के मजमूए से करता है और उनको पूरे मजमूए में से (जो किसी ग़रज़ के लिए एक और अनुपात से बनाया गया था) अलग निकालकर अपने लिए फ़ायदेमन्द बनाता है, उनके साथ उसी मिज़ाज की कुछ तदबीरों का (कभी जायज़ होने की शर्त के साथ और कभी इस शर्त के बिना) जोड़ लगाता है और इस तरह वे तज़किया किए हुए लोग तैयार करता है जो उसके आर्ट के नज़रिए से मिसाली लोग होते हैं।

मक़सद से महरूम

अब पेशेवर तज़किया करनेवाले को लीजिए। आप पाएँगे कि उसके यहाँ नस्बुल-ऐन (मूलोद्देश्य) बड़ी हद तक मौजूद ही नहीं है। उसकी लेबोरेट्री में आपको हर मॉडल के तज़किया किए हुए लोग मिल जाएँगे। वह उन तमाम कमियों को दूर करने की कोशिश करेगा जिसकी तज़किया की मण्डी में माँग नहीं है और उन तमाम ख़ूबियों को परवान चढ़ाने में पूरा ज़ोर लगा देगा जिनकी माँग बाज़ार में पाई जाती है। इसी ग़रज़ के लिए वह तज़किया की कुछ मुनासिब तदबीरें इख़्तियार करेगा। फिर उन तदबीरों से तज़किया किए हुए जो लोग तैयार होंगे उनको छोड़ देगा कि बाज़ार में जहाँ ख़प सकें ख़प जाएँ। उसका हाल पेशावर हथियार बनानेवाला जैसा होगा कि जिसे इस बात की कुछ परवाह नहीं होती कि उसकी चमकाई हुई तलवारें किसकी कमर में बँधती हैं, इसलिए कि दुनिया के जंगी मैदान में उसकी न किसी से जंग है और न दुश्मनी। वह उस मैदाने-जंग में एक ग़ैर-जानिबदार कारीगर है, जिसका काम इसके सिवा कुछ नहीं कि अच्छे-अच्छे परहेज़गार, फ़र्ज़-शनास, दयानतदार, ख़ुश-मामला आदमी तैयार कर दे। अब अगर यह

उस कारख़ाने का मार्का पेशानी पर लिए हुए किसी ज़ालिम की पुलिस में 'मुत्तक़ी' थानेदार बन जाएँ, या किसी ताग़ूत की अदालत में ग़ैरइलाही बल्कि सरीह ख़िलाफ़े-शरीअते-इलाही बुनियाद पर मुक़द्दमा लड़नेवाले 'दयानतदार' वकील या ख़ुद फ़ैसला करनेवाले 'परहेज़गार' ताग़ूत बन जाएँ, जहाँ अमली तौर पर ख़ुदा के खुले बाग़ियों की बड़ाई क़ायम होती है तो इसमें कोई हरज नहीं बल्कि ऐसे जितने कामयाब पुर्ज़े उसकी ख़ानक़ाह से मंसूब होंगे, उतनी ज़्यादा उसकी कामयाबी की शहादत फ़राहम होगी। उसकी तो अस्ल कामयाबी यही है कि उसके तैयार किए हुए पुर्ज़े ख़ुदा की याद और उसके ख़ौफ़ से पायदारी हासिल करके ख़ुद ख़ुदा ही के बाग़ियों की मशीन में बहुत ही ख़ूबी के साथ लग जाएँ और उन बाग़ियों के अपने ढाले हुए पुर्ज़ों से भी कुछ ज़्यादा एतिमाद के क़ाबिल साबित हों।

इस कारोबार में यह पेशावर मुज़क्की (तज़किया करनेवाले) न सिर्फ़ अख़लाक़ी ख़ूबसूरती और बदसूरती के मेयार को और न सिर्फ़ तज़किए की तदबीरों के निज़ाम को अपने पेशे के मिज़ाज पर ढालता है, बल्कि एक अलग नज़रिया-ए-ज़िन्दगी और एक पूरा फ़लसफ़ा-ए-ज़िन्दगी बनाता है जिसके बग़ैर उसका पेशा क़ायम नहीं हो सकता। उसके तैयार किए हुए इनसानों के दिमाग़ इस तसव्वुर की पैदावार के लिए बिलकुल बंजर हो जाते हैं कि दुनिया में वे अपना भी कोई निज़ामे-ज़िन्दगी रखते हैं जिसे दूसरे निज़ामों के बजाय क़ायम करने के लिए उन्हें मुजाहिदा करना चाहिए। इसके बरख़िलाफ़ वह उन्हें हर ग़ालिब निज़ाम में सहूलत के साथ रहने और साज़गारी करने और उसके अन्दर खप जाने के लिए तैयार करता है और मज़हब, अख़लाक़, रूहानियत और तहज़ीब का एक ऐसा मुनासिब निचोड़ निकालकर उन्हें देता है जिसे साथ रखकर वे हर बिगड़े हुए निज़ाम के बेहतरीन अंग बन सकते हैं।

इनसानों को जंगी हथियार के तौर पर इस्तेमाल करनेवाले

फिर दुनियवी मक़सद के लिए जिद्दोजुहद करनेवालों की बहुत-सी क़िस्में हैं। इस क़िस्म में वे भी शामिल हैं जिनके सामने अपना या अपने ख़ानदान या तबक़े का कोई मक़सद होता है या वे जो क़ौम या वतन की मुहब्बत की

वजह से एक मक़सद लेकर उठते हैं और वे भी जो ख़ालिस इनसानी फ़ायदों और हितों के लिए कोई स्कीम चलाना चाहते हैं। इनमें से बहुत-से किसी रूहानी और अख़लाक़ी मज़हब को मानते हैं और बहुत-से नहीं मानते। आंशिक रूप में उन सबके इनसान बनाने के तरीक़ों में काफ़ी अन्तर होता है। लेकिन कुल मिलाकर उन सबकी मुश्तरक (Common) ख़ुसूसियत यह होती है कि वे इनसान को इस हैसियत से कम ही देखते हैं कि वह इनसान है। इसके साथ ज़्यादातर दिलचस्पी उन्हें सिर्फ़ इस हैसियत से होती है कि वह उनके मक़सद को हासिल करने का ज़रिआ है। यही नुक्ता-ए-नज़र उनके इनसान बनाने के पूरे निज़ाम पर हावी है। मानो कि वे इनसान नहीं बनाते बल्कि अपनी स्कीम के हथियार और अपनी जंग के लिए हथियार बनाते हैं। यही वजह है कि पसन्दीदा और नापसन्दीदा सिफ़ात में से वे सिफ़ात उनकी उन सूची में जगह नहीं पातीं जो इनसानियत के लिहाज़ से पसन्दीदा या ग़ैर-पसन्दीदा हैं। इस तरह की कुछ सिफ़ात से वे बचते या विरोध करते भी हैं तो इनसानियत के लिहाज़ से नहीं बल्कि सिर्फ़ इस लिहाज़ से कि वे फ़ायदा देनेवाली हैं। अस्ल में उनकी अख़लाक़ की पूरी सूची इस बुनियाद पर तैयार की जाती है कि उनकी स्कीम को लागू करने का हथियार होने की हैसियत से इनसान में कौन-सी सिफ़ात होनी चाहिएँ। इसी बुनियाद पर वे अपने तज़किया और तरबियत का निज़ाम क़ायम करते हैं। अगर आप उनके इनसान बनाने के इस निज़ाम को समझना चाहें तो सिर्फ़ एक बात उसके पूरे ख़ुलासे के लिए काफ़ी है और वह यह है कि जो सिफ़ात अस्ल में बुलन्द इनसानियत की ख़ुसूसियात में से हैं उनको भी यह निज़ाम इस तौर पर अपने तरबियत पाए हुए इनसानों में परवरिश करता है कि वह इनसान होने के सौभाग्य के बजाए सिर्फ़ एक हथियार की ख़ूबी बनकर रह जाती हैं। जैसे 'सब्र' कि वह बेहतरीन इनसानी सिफ़ात में से है। मगर यह निज़ाम जिन इनसानों में इतना सब्र पैदा कर देता है कि वे बमों की बारिश में भी डटे रहते हैं, उनके अन्दर इतना भी सब्र पैदा नहीं कर सकता कि वह अपनी नफ़्सानी ख़ाहिशात (मनेच्छाओं) के एक मामूली से तक़ाज़े ही के मुक़ाबले में ठहर जाएँ।

इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स

इन सबसे बिलकुल अलग मामला उस शख़्स का है जो इनसान को इस ग़रज़ के लिए तैयार करना चाहता हो कि वह ख़ुदा के इम्तिहान में कामयाब हो और ख़िलाफ़त (रहनुमाई) के उस मंसब का जो ख़ुदा ने इनसान के सुपुर्द किया है पूरा-पूरा हक़ अदा करते हुए ख़ुदा की ख़ुशनूदी को पहुँचे। इस ग़रज़ के लिए वह अख़लाक़ के मसले को उस वुसअत (व्यापकता) के साथ और फिर उसके हर-हर पहलू को सामने रखते हुए और बारीकबीनी (सूक्ष्म-दर्शिता) के साथ देखेगा जिसके साथ कोई दूसरा उसे नहीं देखता। वह ज़िन्दगी के उस पूरे दायरे की पैमाइश करेगा जिसमें इनसान की आज़माइश हो रही है। इस दायरे के हर हिस्से के बारे में तहक़ीक़ और खोज़बीन करेगा कि किस हिस्से में किस पहलू से आज़माइश है और इस आज़माइश में कामयाबी का मदार (निर्भरता) किस चीज़ पर है। फिर मजमूई हैसियत से पूरी ज़िन्दगी के इम्तिहान के बारे में यह जाँच करेगा कि इसमें असूल में अल्लाह का वह मंशा क्या है जिसे पूरा करने पर ही इनसान की कामयाबी निर्भर है। फिर इसी नज़रिए से यह देखेगा कि इनसान के अन्दर और उसके बाहर कौन-कौन-सी चीज़ें ऐसी हैं जो उसकी कामयाबी की राह में बाधा बनती हैं और उनमें से हर एक का राह की रुकावट बनने की हैसियत से क्या मर्तबा है और इसी तरह बातिन और ख़ारिज में क्या चीज़ें उसकी कामयाबी के लिए फ़ायदेमन्द और मददगार हैं और उसके फ़ायदेमन्द व मददगार होने के एतिबार से उनके क्या दर्जे हैं। यही वह बुनियाद है जिसपर वह मतलूब और ग़ैरमतलूब कामों की फ़ेहरिस्त तैयार करेगा और इसी बुनियाद पर इस बात को भी तय करेगा कि कौन-सी चीज़ किस दर्जे में मतलूब या ग़ैर-मतलूब है और उसे हासिल करने या मिटाने पर कितना ज़ोर लगाना चाहिए। फिर यही वह बुनियाद है जिस पर वह तज़किया की तदबीरों का चुनाव करेगा। उसके तज़किया के निज़ाम में ऐसी तमाम तदबीरें जमा होंगी जिनसे इनसान की कामयाबी की अन्दरूनी रुकावटें दूर हों और उसके अन्दर बाहरी रुकावट को दूर करने और मिटाने का हौसला और बलबूता परवान चढ़ सके तथा जिनसे वे चीज़ें उसके अन्दरून में उभरें और

तरक़्क़ी करें जो उसकी कामयाबी में मददगार हो सकती हैं और उन चीज़ों को वे हासिल करने और तरक़्क़ी देने का ख़ाहिशमन्द और लायक़ बन जाए जो ख़ारिज में उसके लिए कामयाबी का साधन हैं। सिर्फ़ यही नहीं कि वह ऐसी तमाम तदबीरों को अपने निज़ाम में जमा करेगा बल्कि हक़ीक़त में उसके निज़ाम में उन तमाम तदबीरों के अन्दर इसी मक़सद की रूह कारफ़रमा होगी और इसी मक़सद को सामने रखकर वह उन तदबीरों को एक तनासुब के साथ अपने तज़किया के निज़ाम में जगह देगा।

यही आख़िरी क़िस्म का तज़किया-ए-नफ़्स इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स है। हो सकता है कि इस तज़किया के निज़ाम की इस्तिलाहें (परिभाषाएँ) और उसके कुछ अंश किसी दूसरी नौइयत के तज़किया के निज़ाम में पाए जाएँ, लेकिन सख़्त ग़लती पर होगा वह शख़्स जो सिर्फ़ इतनी ही समानता देखकर उसे इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स समझ बैठेगा। ख़ूब समझ लीजिए कि जहाँ मतलूब (वांछित) और ग़ैरमतलूब (अवांछित) चीज़ों की फ़ेहरिस्त में इस्लाम की फ़ेहरिस्त से कुछ कमी-बेशी पाई जाती है, जहाँ मतलूब और ग़ैर-मतलूब मर्तबों में भी कुछ उलट-फेर है, जहाँ तज़किया-ए-नफ़्स के काम में आर्ट या पेशावरी या दुनिया की चाहत का रंग पाया जाता है और जहाँ तज़किया की तदबीरों में और उनके उस तनासुब में जो नबी (सल्ल०) ने क़ायम किया था, रद्दोबदल भी किया गया है, वहाँ ज़रूर मक़सद-ए-तज़किया बदल गया है और मक़सद के बदल जाने की वजह से तज़किया की नौइयत भी बदल चुकी है। ऐसा तज़किया-ए-नफ़्स चाहे उसमें तक़वा और तहारत की कितनी ही बात हो और चाहे उसमें इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स के निहायत पाकीज़ा अंश कितने ही बढ़ा-चढ़ाकर शामिल किए गए हों। बहरहाल उस क़द्र के लायक़ नहीं हो सकता जो सिर्फ़ इस्लामी तज़किया-ए-नफ़्स ही के लिए ख़ास है। ज़ाहिर है कि किसी मक़सद के लिए लड़नेवाले ने अगर तलवार पर धार का एक-एक हाथ मारने को बड़े अज्र और सवाब का काम ठहरा दिया हो तो यह अज्र और सवाब का हुक्म वहाँ हरगिज़ चस्पाँ न होगा जहाँ सिर्फ़ आर्ट के तौर पर धार के हाथ मारे जा रहे हों या जहाँ उसके दुश्मन के लिए तलवारें तेज़ की जा रही हों।

बुनियादी ख़ूबियाँ

ज़ाहिर है कि ऐसे लोगों के हाथों किसी इस्लामी निज़ाम के क़ियाम का ख़याल भी नहीं किया जा सकता जो इस्लाम को जानते ही न हों या उसके बारे में ख़ुद अपने अन्दर ही दिली इत्मीनान और ज़हनी यकसूई न रखते हों, या इसको ख़ुद अपने अख़लाक़ और किरदार और अपनी अमली ज़िन्दगी का दीन न बना सकते हों या इसके क़ियाम की कोशिश को उन्होंने अपना मक़सद न बनाया हो। इसी तरह यह भी ज़ाहिर है कि अगर मतलूबा ख़ूबियों के लोग जमा तो हो जाएँ मगर उनके दिल आपस में जुड़े हुए न हों, उनमें एक-दूसरे का सहयोग और अनुशासन (Discipline) न हो, उनको मिलकर काम करने का ढंग न आता हो और बाहमी मशवरे और तनक़ीद (समालोचना) के सही तरीक़ों को जानते ही न हों तो सिर्फ़ उनका जमा हो जाना कोई फ़ायदेमन्द नतीजा पैदा नहीं कर सकता।

अल्लाह से ताल्लुक़ और इख़लास (निष्ठा)

हक़ीक़त में हमें देखना यह है कि इनके अलावा, वे बुनियादी ख़ूबियाँ कौन-सी हैं जो इस्लाह और तामीर के मक़सद में कामयाब होने के लिए ज़रूरी हैं।

इनमें से सबसे पहली ख़ूबी अल्लाह से ताल्लुक़ और अल्लाह के लिए मुख़लिस होना है। दुनिया के दूसरे सब काम तो ख़ुद या ख़ानदान या क़बीले या क़ौम और वतन की ख़ातिर किए जा सकते हैं, ख़ुदापरस्ती ही नहीं ख़ुदा के इनकार तक के साथ किए जा सकते हैं और उनमें हर तरह की दुनियवी कामयाबियाँ मुमकिन हैं, लेकिन इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी का बरपा करना ऐसा काम है जिसमें कोई कामयाबी उस वक़्त तक मुमकिन नहीं है जब तक आदमी का ताल्लुक़ अल्लाह के साथ सही, मज़बूत और गहरा न हो और उसकी नीयत सच्चे दिल से अल्लाह ही के लिए काम करने की न हो। इसकी वजह यह है कि यहाँ जिस चीज़ को आदमी क़ायम करना चाहता है वह अल्लाह का दीन है और इसे क़ायम करने के लिए ज़रूरी है कि आदमी सब कुछ उस ख़ुदा के लिए करे जिसका यह दीन है। उसी की हिमायत और मदद

पर पूरे तौर से भरोसा होना चाहिए। उसी से बदले की सारी उम्मीदें लगानी चाहिएँ। उसी की हिदायतों और उसी के हुक्मों का उसमें पालन होना चाहिए और उसी की पकड़ का ख़ौफ़ दिल पर छाया रहना चाहिए। उसके सिवा जिस ख़ौफ़ और जिस लालच और जिस मुहब्बत और जिस इत्तिबाअ और इताअत की मिलावट भी होगी, और जो दूसरी ग़रज़ भी इस काम में शामिल हो जाएगी वह सीधे रास्ते से क़दम हटा देगी और उसके नतीजे में और जो कुछ भी क़ायम हो जाए बहरहाल अल्लाह का दीन क़ायम न हो सकेगा।

आख़िरत की फ़िक्र

इसी से बहुत ज़्यादा क़रीब ताल्लुक़ रखनेवाली ख़ूबी फ़िक्रे-आख़िरत है। मोमिन के काम करने की जगह हालाँकि दुनिया है और जो कुछ उसे करना है यहीं करना है, मगर वह काम इस दुनिया के लिए नहीं करता बल्कि आख़िरत के लिए करता है और उसकी नज़र के सामने दुनिया में आनेवाले नतीजे नहीं बल्कि आख़िरत में हासिल होनेवाले नतीजे होते हैं। उसे हर वह काम करना चाहिए जो आख़िरत में नफ़ा देनेवाला है और हर उस काम से रुक जाना चाहिए जिसका वहाँ कोई हासिल नहीं निकलता है। उसे हर उस फ़ायदे को ठुकरा देना चाहिए जो आख़िरत में नुक़सान की वजह हो। और हर उस नुक़सान को उठा लेना चाहिए जो आख़िरत में फ़ायदा देनेवाला हो उसे फ़िक्र सिर्फ़ आख़िरत के अज़ाब और सवाब की होनी चाहिए, दुनिया के किसी अज़ाब और सवाब की कोई अहमियत उसकी निगाह में न होनी चाहिए। उसकी कोशिशों का इस दुनिया में कोई नतीजा निकले या न निकले, यहाँ उसे कामयाबी होती नज़र आए या नाकामी, यहाँ उसकी तारीफ़ हो या उसे बुरा कहा जाए, यहाँ वह इनाम पाए या आज़माइशों में डाला जाए, हर हाल में उसको इस यक़ीन के साथ काम करना चाहिए कि जिस ख़ुदा के लिए वह ये सारी मेहनतें कर रहा है उसकी निगाह से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है और उसके यहाँ आख़िरत की हमेशा-हमेशा के इनाम से वह हरगिज़ महरूम न रहेगा और वहीं की कामयाबी अस्ल कामयाबी है। इस ज़हनियत के बग़ैर आदमी के लिए चन्द क़दम भी इस राह में सही रुख़ पर चलना मुमकिन नहीं है। दुनिया हासिल करने का लगाव किसी अदना दर्जे

में भी उसके साथ लगा रह जाए तो वह क़दम में लग़ज़िश पैदा किए बग़ैर नहीं रह सकता। अल्लाह की राह में एक चोट नहीं तो दो-चार चोटें आख़िरकार उस शख़्स की हिम्मतें तोड़ देती हैं जो दुनियवी कामयाबियों को मक़सूद बनाकर चलता है और इस राह की कोई कामयाबी किसी-न-किसी मरहले पर उस आदमी के रवैये में बिगाड़ पैदा कर देती है, जिसके दिल को दुनियवी मक़ासिद की कोई चाट लगी हुई हो।

अच्छी सीरत

इन दोनों ख़ूबियों के असर और प्रभाव को जो चीज़ अमली तौर पर बस में कर लेने की ज़बरदस्त ताक़त में तब्दील कर देती है वह अच्छी सीरत है। अल्लाह की राह में काम करनेवाले लोगों को बड़े दिल का और बुलन्द हौसलेवाला होना चाहिए। लोगों का हमदर्द और इनसानों का ख़ैरख़ाह होना चाहि, नेकदिल और शरीफ़ तबीअत का होना चाहिए, ख़ुद्दार और क़नाअत-पसन्द (सन्तोषी) होना चाहिए, विनयभाव रखनेवाला और विनम्र होना चाहिए, मीठी-बोली बोलनेवाला और नर्म आदत का होना चाहिए। वे ऐसे लोग होने चाहिएँ जिनसे किसी को बुराई का अन्देशा न हो और हर एक उनसे ख़ैरख़ाही की उम्मीद रखता हो। जो अपने हक़ से कम पर राज़ी हों और दूसरों को उनके हक़ से ज़्यादा देने पर तैयार हों, बुराई का जवाब भलाई से दें या कम-से-कम बुराई से न दें। जो अपने महबूब की मुहब्बत का एतिराफ़ करें और दूसरों की भलाइयों के क़द्रदान हों, जो इतना बड़ा दिल रखते हों कि लोगों की कमज़ोरियों को नज़रअन्दाज़ कर सकें। क़ुसूरों को माफ़ कर सकें, ज़्यादतियों से दरगुज़र कर सकें और अपनी ज़ात के लिए किसी से इन्तिक़ाम न लें। जो ख़िदमत लेकर नहीं ख़िदमत करके ख़ुश होते हों। अपनी ग़रज़ के लिए नहीं बल्कि दूसरों की भलाई के लिए काम करें, हर तारीफ़ से बेनियाज़ और हर मज़म्मत (निन्दा) से बेपरवा होकर अपना फ़र्ज़ अंजाम दें और ख़ुदा के सिवा किसी के अज्र पर निगाह न रखें। जो ताक़त से दबाए न जा सकें, दौलत से ख़रीदे न जा सकें, मगर हक़ और सच्चाई के आगे बेझिझक सर झुका दें। जिनके दुश्मन भी उन पर यह भरोसा रखते हों कि किसी हाल में उनसे शराफ़त व दयानत और इनसाफ़ के

ख़िलाफ़ कोई हरकत नहीं हो सकती। ये दिलों को मोह लेनेवाले अख़लाक़ हैं। इनकी काट तलवार की काट से बढ़कर और इनकी दौलत सोने-चांदी की दौलत से ज़्यादा क़ीमती है। किसी व्यक्ति को ये अख़लाक़ मयस्सर हों तो वह अपने आस-पास की आबादी का मनमोह लेता है। अगर कोई जमाअत इन ख़ूबियों को अपने अन्दर पैदा कर ले और इनसे सुसज्जित हो जाए तो फिर दुनिया की कोई ताक़त उसे हरा देने में कामयाब नहीं हो सकती।

सब्र

इसके साथ एक और ख़ूबी भी है जिसे कामयाबी की कुंजी कहना चाहिए और वह है सब्र। यह एक व्यापक शब्द है जिसके बहुत-से मफ़हूम (अर्थ, भाव) और मतलब हैं और अल्लाह की राह में काम करनेवालों को इनमें से हर मफ़हूम (अर्थ, भाव) के लिहाज़ से सब्र करनेवाला होना चाहिए।

सब्र का एक मफ़हूम यह है कि आदमी जल्दबाज़ न हो। अपनी कोशिशों के नतीजे फ़ौरन और जल्दी देख लेने के लिए बेताब न हो और देर लगते देखकर हिम्मत न हार जाए। सब्र करनेवाला वह है जो तमाम उम्र एक मक़सद के पीछे लगातार मेहनत किए चला जाता है और एक के बाद एक नाकामियों के बावजूद अपने काम में लगा रहता है। लोगों की इस्लाह और ज़िन्दगी की तामीर का काम इतना ज़्यादा सब्र चाहता है कि इस ख़ूबी के बग़ैर कोई शख़्स अपनी इस ज़िम्मेदारी को पूरी नहीं कर सकता। यह बहरहाल हथेली पर सरसों जमाना नहीं है।

सब्र का दूसरा मफ़हूम यह है कि आदमी तलव्वुन (रंग बदलने) और राए की कमज़ोरी और हौसले की कमी की बीमारी में पड़ा हुआ न हो। उसमें यह ख़ूबी मौजूद हो कि जिस राह को उसने सोच-समझकर इख़्तियार कर लिया है उसपर जमा रहे और दिल के पक्के इरादे और हौसले की पूरी क़ुव्वत के साथ उसपर बढ़ता चला जाए।

सब्र का एक मतलब यह भी है कि आदमी मुश्किलों और परेशानियों का मर्दानावार मुक़ाबला करे और अपने मक़सद की राह में जो तकलीफ़ भी

पेश आ जाए उसे ठण्डे दिल के साथ बर्दाश्त करे। सब्र करनेवाला आदमी किसी तूफ़ान और किसी सैलाब के थपेड़ों से हार मानकर मुँह नहीं मोड़ता।

सब्र के मफ़हूम (अर्थ) में यह बात भी दाख़िल है कि आदमी जल्द बुरा मान जानेवाला और भड़कीले स्वभाव का न हो बल्कि सहन और बर्दाश्त करनेवाला हो। जिस शख़्स को इस्लाह और तामीर का काम करना हो और ख़ुसूसियत के साथ जबकि यह ख़िदमत उसे मुद्दतों की बिगड़ी हुई सोसाइटी में अंजाम देनी हो, उसे यक़ीनी तौर पर बड़ी गन्दी और घिनावनी क़िस्म की मुख़ालिफ़तों से वास्ता पेश आकर रहता है। अगर वह इतनी ताक़त नहीं रखता कि गालियाँ खाकर हँस दे, ताने सुनकर टाल दे, इलज़ाम और बुहतान और झूठे प्रोपेगेंडे को यकसर नज़रअन्दाज़ करके पूरे सुकून और दिली इत्मीनान के साथ अपना काम करता रहे तो बेहतर यही है कि वह इस राह में क़दम ही न रखे। इसलिए कि यह काँटो भरी राह है। इस राह का हर काँटा यह तय किए बैठा है कि आदमी जिस तरफ़ भी चाहे उस तरफ़ चला जाए मगर इस तरफ़ उसे एक इंच भी न बढ़ने दिया जाएगा। इस हालत में जो शख़्स हर काँटे से उलझने लगे वह क्या आगे बढ़ेगा! यहाँ तो ऐसे लोगों की ज़रूरत है जिनके दामन से अगर कोई काँटा उलझ जाए तो वे दामन का वह हिस्सा फाड़कर उसके हवाले कर दें। एक लम्हे के लिए भी अपनी राह खोटी न करें। यह सब्र सिर्फ़ मुख़ालिफ़ों ही के मुक़ाबले में दरकार नहीं है बल्कि कभी-कभी इस राह पर चलनेवाले को ख़ुद अपने साथियों से भी तल्ख़ और नागवार बातों से वास्ता पड़ जाता है और उनके मामले में अगर वह सहन और बर्दाश्त से काम न ले तो पूरे क़ाफ़िले की राह मार सकता है।

सब्र इस चीज़ का नाम भी है कि आदमी हर ख़ौफ़ और हर लालच के मुक़ाबले में सीधी-सच्ची राह पर जमा रहे। शैतान की सारी उकसाहटों और नफ़्स की तमाम ख़ाहिशों के खिलाफ़ अपना फ़र्ज़ पूरा करे। हराम से परहेज़ करे और अल्लाह की हदों पर क़ायम रहे। गुनाह की सारी लज़्ज़तों और फ़ायदों को ठुकरा दे और नेकी और सच्चाई के हर नुक़सान और उसकी बदौलत हासिल होनेवाली हर महरूमी को बर्दाश्त कर जाए। अपनी आँखों से दुनियापरस्तों की दुनिया के जलवे देखे और उसपर रीझना तो दूर की बात

दिल में मामूली-सी हसरत तक को राह न दे। अपने सामने दुनिया तलबी की राहें कुशादा और कामयाबियों के मौक़े मौजूद पाए और दिल के पूरे इत्मीनान के साथ ज़िन्दगी की इस दौलत पर राज़ी रहे जो अपने मक़सद की ख़िदमत करते हुए वह अपने रब की मेहरबानी से हासिल कर रहा हो।

सब्र इन तमाम मानी में कामयाबी की कुन्जी है। जिस पहलू से भी हमारे काम में बेसब्री का दख़ल होगा, उसका बुरा नतीजा ज़ाहिर होकर रहेगा।

हिकमत और गहरी सूझ-बूझ

इन सब ख़ूबियों के साथ एक बहुत ही अहम ख़ूबी हिकमत यानी सूझ-बूझ है जिसपर बड़ी हद तक कामयाबी का दारोमदार है। दुनिया में ज़िन्दगी के जो निज़ाम भी क़ायम हैं उनको ऊँचे दर्जे के अक़्लमन्द और होशियार लोग चला रहे हैं और उनकी पुश्त पर माद्दी वसाइल (आर्थिक संसाधनों) के साथ अक़ली और फ़िक्री ताक़तें और इल्मी और फ़न्नी (कलात्मक) क़ुव्वतें काम कर रही हैं। इनके मुक़ाबले में एक दूसरे निज़ाम को क़ायम कर देना और कामयाबी के साथ चला लेना कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह उन भोले-भाले लोगों का काम नहीं है जो एक कोने में बैठे अल्लाह-अल्लाह करते रहते हैं। सीधे-सादे लोग चाहे कितने ही नेक और नेक नीयत हों, इस काम को अंजाम नहीं दे सकते। इसके लिए गहरी नज़र और सूझ-बूझ की ज़रूरत है। इसके लिए बड़ी अक़्लमन्दी और मामले को समझ पाने की सलाहियत दरकार है। इस काम को वही लोग कर सकते हैं जो मौक़े को पहचाननेवाले और तदबीर से काम लेनेवाले हों। ज़िन्दगी के मसाइल को समझने और हल करने की सलाहियत रखते हों।

इन सब ख़ूबियों के लिए 'हिकमत' एक ऐसा लफ़्ज़ है जिसमें ये सारे मतलब आ जाते हैं और समझदारी और सूझ-बूझ के कई काम हिकमत के तहत आते हैं।

यह हिकमत है कि आदमी इनसानी नफ़सियात की समझ रखता हो और इनसानों से मामला करना जानता हो। हर शख़्स को एक ही लगी-बँधी दवा न देता चला जाए बल्कि हर एक के मिज़ाज और मर्ज़ की सही

जाँच करके इलाज करे। सबको एक लकड़ी से न हाँके। बल्कि जिन-जिन लोगों और तबक़ों और गरोहों से उसको वास्ता पेश आए उनके मख़सूस हालात को समझकर उनके साथ मामला करे।

यह भी हिकमत है कि आदमी अपने काम को और उसके करने के तरीक़ों को जानता हो और उसके रास्ते में पेश आनेवाली क़ठिनाइयों, मुख़ालिफ़तों और रुकावटों से निपटना भी उसको आता हो। उसे ठीक-ठीक मालूम हो कि जिस मक़सद के लिए वह कोशिश करने उठा है उसके लिए उसे क्या कुछ करना है, किस-किस तरह करना है, और किस-किस क़िस्म की रुकावटों को किस तरह दूर करना है।

इन सब हिकमतों से बढ़कर सबसे बड़ी हिकमत की बात यह है कि आदमी दीन में सूझ-बूझ और दुनिया के मामलों में बसीरत (विवेक) रखता हो। केवल आदेशों एवं निर्देशों और इस्लामी क़ानूनों का जानकार होना और उन्हें पेश आनेवाली बातों पर चस्पाँ कर देना फ़तवा देनेवाले पद के लिए तो काफ़ी हो सकता है, मगर बिगड़े हुए समाज को दुरुस्त करने और ज़िन्दगी के निज़ाम को जाहिलियत की बुनियादों से उखाड़कर दीन की बुनियादों पर नए सिरे से क़ायम करने के लिए काफ़ी नहीं हो सकता। इस मक़सद के लिए तो ज़रूरी है कि आदमी जुज़इयाते-अहकाम (आंशिक आदेशों) के साथ कुल्लियाते-अहकाम (व्यापक आदेशों) बल्कि दीन के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) पर नज़र रखता हो, फिर कुल्लियाते-अहकाम के साथ उनकी हिकमत का भी उसे इल्म हो और वक़्त के इन हालात और मसाइल को भी वह समझता हो जिनमें इन अहकाम को राइज करना मतलूब है।

एक ग़लतफ़हमी

मतलूबा औसाफ़ (वांछित गुणों) के इस मजमूए (संग्रह) को देखकर सरसरी नज़र में एक आदमी डरने लगता है और यह ख़याल करने लग जाता है कि यह काम तो फिर कामिलीन (सिद्ध और पहुँचे हुए लोगों) के करने का है। आम इनसान कहाँ से इतनी ख़ूबियाँ लेकर आ सकते हैं। इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए यह समझ लेना ज़रूरी है कि हर ख़ूबी और सिफ़त का हर शख़्स में कमाल दर्जे का पाया जाना लाज़िम नहीं है और न

यही लाज़िम है कि किसी में वह पहले ही क़दम पर पूरी तरबीयत पाई हुई शक्ल में मौजूद हो। हमारा मक़सद इन बातों के बयान करने से सिर्फ़ यह बात ज़हन में बिठाना है कि इस काम को सिर्फ़ 'क़ौम की ख़िदमत का एक काम' समझकर यूँ ही खड़े होने के बजाय अपने नफ़्स का जाइज़ा लेकर सबसे पहले यह मालूम करने की कोशिश की जाए कि इस काम के लिए जो सिफ़ात मतलूब हैं उनका माद्दा (तत्त्व) भी मौजूद है या नहीं। बस माद्दा अगर मौजूद है तो शुरुआत के लिए काफ़ी है। इसको परवरिश करना और अपनी-अपनी लियाक़त और क़ाबीलियत के मुताबिक़ ज़्यादा-से-ज़्यादा मुमकिन हद तक तरक़्क़ी देना बाद के मराहिल से ताल्लुक़ रखता है। जिस तरह एक ज़रा-सा बीज ज़मीन में जड़ पकड़ने के बाद धीरे-धीरे ग़िज़ा पाकर तनावर दरख़्त बन जाता है। लेकिन बीज ही मौजूद न हो तो कुछ भी नहीं बन सकता। इसी तरह सिफ़ाते-मतलूबा का माद्दा मौजूद हो तो मुनासिब कोशिश और प्रयास और तरबियत से वह दर्जा-ब-दर्जा कमाल तक पहुँच सकता है।

इस्लाह और तामीर के लिए काम करने का एक सही दस्तूर और निज़ाम जितना ज़रूरी है उससे बहुत ज़्यादा ज़रूरी ऐसे काम करनेवालों का मौजूद होना है जो इस काम के लिए मुनासिब अख़लाक़ी सिफ़तें रखते हों, क्योंकि आख़िरकार जिस चीज़ को समाज के बिगाड़ से सामना होता है और अच्छी और नेक तामीर की आज़माइशों से दो-चार होना है वह किसी दस्तूर की दफ़ाएँ (धाराएँ) नहीं बल्कि उन लोगों की इनफ़िरादी और इज्तिमाई सीरत है जो मैदाने-अमल में काम करने के लिए आगे बढ़ें। इस लिहाज़ से वे ख़ूबियाँ जो काम की हैसियत से इस काम में हिस्सा लेनेवाले हर फ़र्द के अन्दर मौजूद होनी चाहिएँ, ये हैं—

1. दीन की सही समझ।
2. उसपर पुख़्ता ईमान।
3. उसके मुताबिक़ सीरत और किरदार।
4. उसको क़ायम करने को ज़िन्दगी का मक़सद बनाना।

फिर वे ख़ूबियाँ, जो ख़िदमत के लिए उठनेवाली जमाअत में पाई जानी चाहिएँ, ये हैं—

1. बाहमी मुहब्बत, अच्छा गुमान, इख़लास, हमदर्दी और ख़ैरख़ाही और एक-दूसरे के लिए क़ुरबानी।
2. आपस के मशवरे से काम करना और मशवरे के इस्लामी आदाब को ध्यान में रखना।
3. नज़्म और ज़ब्त (अनुशासन), बाज़ाब्तगी और बाक़ायदगी, सहयोग और टीम स्प्रिट।
4. इस्लाह और सुधार की नीयत से तनक़ीद (समालोचना) जो सलीक़े और मुनासिब तरीक़े से हो। जिससे जमाअत के अन्दर पैदा हुई ख़राबियों को वक़्त पर दूर किया जा सके, न कि ख़राबियों में उल्टा इज़ाफ़ा।

और फिर इसके साथ वे औसाफ़ (गुण) जो इस्लाह की कोशिश को सही राह पर चलाने और हक़ीक़ी कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचाने के लिए लाज़िमी हैं, यानी—

1. उस अल्लाह के साथ गहरा ताल्लुक़ और उसी की ख़ुशी हासिल करने के लिए काम करना
2. आख़िरत की पूछगछ को याद रखना और आख़िरत में बदले के सिवा किसी दूसरी चीज़ पर निगाह न रखना
3. अच्छा अख़लाक़
4. सब्र
5. हिकमत।

अब हमें यह दिखाना है कि वे बड़ी-बड़ी बुराइयाँ क्या हैं जिनसे इस बड़े मक़सद के ख़ादिमों को पाक होना चाहिए।

वह ऐब जो हर भलाई की जड़ काट देता है

सबसे पहला और बदतरीन ऐब जो हर भलाई की जड़ काट देता है, घमण्ड, ग़ुरूर, ख़ुदपसन्दी और डींगे मारना है। यह एक सरासर शैतानी जज़बा है जो शैतानी कामों के लिए मुनासिब हो सकता है, ख़ैर और भलाई का कोई काम इसके साथ नहीं किया जा सकता। इसलिए कि बड़ाई सिर्फ़ अल्लाह के लिए है। बन्दों में बड़ाई का घमण्ड एक झूठ के सिवा कुछ नहीं। जो शख़्स या गरोह इस झूठे घमण्ड में पड़ा हो वह अल्लाह की हर मदद से

महरूम हो जाता है। क्योंकि अल्लाह को सबसे बढ़कर यही चीज़ अपनी मख़लूक़ में नापसन्द है। इसका नतीजा यह होता है कि इस रोग के रोगी को कभी सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत नहीं मिलती। वह एक के बाद एक जिहालतें और बेवकूफ़ियाँ करता है, यहाँ तक कि आखिरकार नाकामी का मुँह देखता है। इसका नतीजा यह भी होता है कि ख़ुदा की मख़लूक़ के साथ बर्ताव में उससे घमण्ड का जितना-जितना इज़हार होता जाता है, उतनी ही उसके ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा होती जाती है। यहाँ तक कि वह लोगों की नफ़रत और ग़ुस्से का शिकार होकर इस क़ाबिल ही नहीं रहता कि उसका कोई अख़लाक़ी असर लोगों में क़ायम हो सके।

नेकी और भलाई के लिए काम करनेवालों में यह बीमारी कई रास्तों से आती है। कमज़र्फ़ (ओछे) लोगों में यह इस रास्ते से आती है कि जब उनकी दीनी और अख़लाक़ी हालत आसपास के समाज के मुक़ाबले में किसी हद तक बेहतर हो जाती है और कुछ क़ाबिले-क़द्र ख़िदमतें भी वे कर लेते हैं, जिनका एतिराफ़ दूसरों की ज़बानों से होने लगता है, तो शैतान उनके दिलों में यह वसवसा डालना शुरू कर देता है कि अब तुम वाक़ई बड़ी चीज़ हो गए हो और शैतान ही की उकसाहट से वे अपनी बड़ाई अपनी ज़बान और अपने तर्ज़े-अमल (कर्मशैली) से जताने पर उतर आते हैं। इस तरह वह काम जिसकी शुरुआत नेकी के जज़बे से हुई थी धीरे-धीरे एक बहुत ही ग़लत रास्ते पर चल पड़ता है।

दूसरा रास्ता उसके आने का यह है कि जो लोग नेकनीयती के साथ एक तरफ़ अपनी और दूसरी तरफ़ अल्लाह की मख़लूक़ की इस्लाह और सुधार के लिए कोशिश करते हैं उनके अन्दर कुछ-न-कुछ भलाइयाँ ज़रूर पैदा हो जाती हैं, किसी-न-किसी हद तक वे अपने समाज की आम हालत से कुछ अलग होते हैं, कुछ-न-कुछ उनकी ख़िदमतें क़ाबिले-क़द्र साबित होती हैं और ये हक़ीक़त में ऐसे काम हैं जो बहरहाल महसूस हुए बग़ैर नहीं रहते। इस सच्ची बात का एहसास बजाए-ख़ुद फ़ितरी और लाज़िमी है। मगर नफ़्स की एक ज़रा-सी ढील और शैतान की एक ज़रा-सी उकसाहट उसे तकब्बुर (घमण्ड) और ख़ुदपसन्दी में बदल देती है। फिर कभी-कभी ऐसी सूरतें भी

पेश आती हैं कि जब उनके विरोधी उनके काम में और काम से गुज़रकर उनकी ज़ात में कीड़े डालने की कोशिश करते हैं तो उन्हें मजबूरन अपने बचाव में ऐसी बातें कहनी पड़ती हैं जो चाहे बयाने-वाक़िआ ही हों मगर अपनी ख़ूबियों के इज़हार से ख़ाली नहीं होतीं। इस चीज़ को ज़रा-सी बेएतिदाली (असन्तुलन) जाइज़ हद से बढ़ाकर घमण्ड की हदों में पहुँचा देती है।

बन्दगी का एहसास

यह एक ख़तरनाक चीज़ है जिससे हर उस शख़्स और जमाअत को ख़बरदार रहना चाहिए जो ख़ुलूस के साथ इस्लाह का मक़सद लेकर उठे। ऐसे हर शख़्स में व्यक्तिगत रूप से और हर जमाअत में सामूहिक रूप से अल्लाह का बन्दा होने का एहसास न केवल मौजूद बल्कि ज़िन्दा और ताज़ा रहना चाहिए। उसे कभी यह हक़ीक़त नहीं भुलानी चाहिए कि बड़ाई सिर्फ़ ख़ुदा की ज़ात के लिए ख़ास है, बन्दे का मक़ाम आजिज़ी और मिन्नत के सिवा और कुछ नहीं। किसी बन्दे में अगर हक़ीक़त में कोई भलाई पैदा हो तो यह अल्लाह की मेहरबानी है। घमण्ड का नहीं, शुक्र का मक़ाम है। अल्लाह के सामने और ज़्यादा झुकना चाहिए और इस थोड़ी-सी पूँजी को नेकी और भलाई की ख़िदमत में लगा देना चाहिए ताकि अल्लाह अपनी और ज़्यादा मेहरबानियों से नवाज़े और पूँजी तरक़्क़ी करे। भलाई पाकर ग़ुरूर और घमण्ड में मुब्तला होना अस्ल में उसे बुराई से बदल लेना है और यह तरक़्क़ी का नहीं बल्कि गिरावट और पस्ती का रास्ता है।

अल्लाह का बन्दा होने के एहसास के बाद दूसरी चीज़ जो इनसान को घमण्ड और तकब्बुर के रुझानों से बचा सकती है वह अपने नफ़्स का जाइज़ा और हिसाब लेना है। जो शख़्स अपना ठीक-ठीक हिसाब लगाए और अपनी ख़ूबियों को महसूस करने के साथ-साथ यह भी देखे कि वह किन-किन कमज़ोरियों और ख़ामियों और कोताहियों में मुब्तला है वह कभी ख़ुदपसन्दी और ख़ुदपरस्ती के रोग का शिकार नहीं हो सकता। अपने गुनाहों और क़ुसूरों पर किसी की निगाह हो तो इस्तिग़फ़ार (ख़ुदा से माफ़ी चाहने) से उसको इतनी फ़ुर्सत ही न मिले कि घमण्ड और ग़ुरूर की हवा उसके सर में समा सके।

इस ग़लत रुझान को रोकनेवाली एक और चीज़ यह है कि आदमी सिर्फ़ उन पस्तियों ही की तरफ़ न देखे जिनसे वह अपने आपको बुलन्द पाता है, बल्कि दीन और अख़लाक़ की उन बुलन्दियों को भी देखे जिनके मुक़ाबले में अभी वह बहुत पस्त है। अख़लाक़ और रूहानियत की पस्तियाँ भी बेइन्तिहा हैं और बुलन्दियाँ भी बेइन्तिहा हैं। बुरे-से-बुरा आदमी भी नीचे की तरफ़ देखे तो किसी को अपने से बदतर पाकर अपनी बरतरी पर फ़ख़्र कर सकता है। मगर इस फ़ख़्र का नतीजा इसके सिवा कुछ नहीं होता कि वह अपनी मौजूदा हालत पर मुत्मइन होकर बेहतर बनने की कोशिश छोड़ देता है। बल्कि इससे आगे बढ़कर नफ़्स की शैतानियत उसे यह इत्मीनान भी दिलाती है कि कुछ और ज़्यादा नीचे उतर जाने की भी अभी गुंजाइश है। यह नुक़्त-ए-नज़र सिर्फ़ वही लोग इख़्तियार कर सकते हैं जो अपनी तरक़्क़ी के दुश्मन हैं। तरक़्क़ी की सच्ची तलब रखनेवाले हमेशा नीचे देखने के बजाय ऊपर देखते हैं। हर बुलन्दी पर पहुँचकर और ज़्यादा बुलन्दियाँ उनके सामने आती हैं जिन्हें देखकर फ़ख़्र के बजाए अपनी पस्ती का एहसास उनके दिल में ख़लिश पैदा करता है और यही ख़लिश उन्हें और ज़्यादा ऊपर चढ़ने पर आमादा करती है।

इन सब चीज़ों के साथ यह भी ज़रूरी है कि जमाअत हर वक़्त इस मामले में चौकन्नी रहे और अपने दायरे में घमण्ड और डींगें, फ़ख़्र और गुरूर जब-जब ज़ाहिर हो तुरन्त नोटिस लेकर वक़्त पर इसकी रोकथाम करे। लेकिन रोकथाम की यह कोशिश कभी ऐसे तरीक़ों से नहीं होनी चाहिए कि लोगों में बनावटी इंकिसार (विनम्रता) और नुमाइशी विनय-भाव की बीमारी पैदा हो जाए। घमण्ड की इससे बदतर कोई क़िस्म नहीं है जिसपर बनावट के साथ विनम्रता का पर्दा डाला गया हो।

वह चीज़ जो ख़ुलूस और ईमान की ज़िद है

दूसरा बड़ा ऐब जो ख़ैर और भलाई की जड़ों को खा जाने में घमण्ड से किसी तरह भी कम नहीं है, यह है कि कोई शख़्स और गरोह भलाई का काम शोहरत और दिखावे के लिए करे और उस काम में उसे लोगों से तारीफ़ें सुनने की फ़िक्र या उसकी परवाह हो। यह चीज़ सिर्फ़ ख़ुलूस ही की नहीं,

हक़ीक़त में ईमान की ज़िद भी है और इसी बिना पर उसे छिपा हुआ शिर्क ठहराया गया है। अल्लाह और आख़िरत पर ईमान का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि इनसान सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी के लिए काम करे। उसी से बदले और इनाम की उम्मीद लगाए और दुनिया के बजाए आख़िरत के नतीजों पर निगाह रखे। लेकिन दिखावा करनेवाला इनसान लोगों की ख़ुशी को अपना मक़सद बनाता है। लोगों ही से हर काम का बदला चाहता है और दुनिया ही में अपना बदला, नाम और शोहरत, लोकप्रियता, पहुँच और असर और शानो-शौकत और रुतबे और मंसब की शक्ल में पा लेता है। इसका मतलब यह है कि उसने लोगों को अल्लाह के साथ शरीक किया या उसके बराबर का ठहरा दिया है। ज़ाहिर है कि इस सूरत में आदमी ख़ुदा के दीन की चाहे कितनी और कैसी ही ख़िदमत करे, बहरहाल वह न ख़ुदा के लिए होगी न उसके दीन की ख़ातिर होगी और न अल्लाह के यहाँ उसको नेकियों में गिना जाएगा।

सिर्फ़ यही नहीं कि यह नापाक जज़्बा नतीजे के लिहाज़ से अमल को बरबाद कर देता है, बल्कि हक़ीक़त में इसके साथ कोई सही अमल करना मुमकिन ही नहीं है। इस जज़्बे की फ़ितरी ख़ासियत यह है कि आदमी को काम से ज़्यादा काम के इश्तिहार की फ़िक्र होती है। वह उसी काम को काम समझता है जिसका ढिंढोरा दुनिया में पिटे और जिसकी प्रशंसा हो और उसकी ख़ूब चर्चा हो। ख़ामोश काम जिसका अल्लाह के सिवा किसी को पता न हो, उसके नज़दीक कोई काम नहीं होता। इस तरह आदमी के अमल का दायरा सिर्फ़ क़ाबिले-इश्तिहार आमाल तक सीमित हो जाता है और इश्तिहार का मक़सद हासिल हो जाने के बाद ख़ुद उन आमाल के साथ भी उसे कोई दिलचस्पी बाक़ी नहीं रहती। शुरुआत में चाहे कितने ही ख़ुलूस के साथ अमली ज़िन्दगी की शुरुआत की गई हो, यह बीमारी लगते ही ख़ुलूस इस तरह ग़ायब होना शुरू हो जाता है जैसे तपेदिक की बीमारी आदमी की ज़िन्दगी की ताक़त को खा जाती है। फिर उसके लिए यह मुमकिन नहीं रहता कि लोगों की नज़रों से हटकर भी नेक रहे और अपना फ़र्ज़ समझकर भी कोई फ़र्ज़ अदा करे। वह हर चीज़ को उसकी नुमाइशी क़द्र और लोगों

की तारीफ़ों की क़ीमत के लिहाज़ से जाँचता है। हर मामले में सिर्फ़ यह देखता है कि दुनिया किस रविश को पसन्द करती है और किसी ऐसे काम का तसव्वुर करना भी उसके लिए असम्भव होता है जो दुनिया में उसे ग़ैर-मक़बूल बनाए चाहे ईमानदारी के साथ उसके दिल की आवाज़ यही हो कि वह है करने का काम।

सबसे कटकर अकेले कोने में बैठकर अल्लाह-अल्लाह करनेवालों के लिए इस फ़ितने से बचना दूसरों के मुक़ाबले में बहुत आसान है। मगर जो लोग पब्लिक में आकर इस्लाह, ख़िदमत और तामीर के काम करते हैं वे हर वक़्त इस ख़तरे में मुब्तला रहते हैं कि न मालूम कब इस रोग के कीटाणु उनके अन्दर दाख़िल हो जाएँ। उन्हें बहरहाल बहुत-से काम वे करने पड़ते हैं जो आम लोगों के सामने आते हैं। उन्हें आम लोगों को अपना हमख़याल बनाने और उनके अन्दर अपना असर डालने की कोशिश करनी होती है। उनके काम की बहुत-सी ज़रूरतें इस बात पर भी उन्हें मजबूर करती हैं कि अपने कामों की रूदादें (रिपोर्टें) प्रकाशित करें। उनकी कुछ-न-कुछ सेवाएँ ऐसी भी होती हैं जिनसे लोगों का ध्यान उनकी तरफ़ होता है और ज़बानों से उनके लिए तारीफ़ों के कलिमात निकलवाता है। उन्हें मुख़ालिफ़तों से भी वास्ता पड़ता है और अपने बचाव में न चाहते हुए भी उन्हें मजबूरन अपने अच्छे पहलुओं को नुमायाँ करना पड़ता है। इन हालात में यह कोई आसान काम नहीं है कि शोहरत हो, मगर शोहरत की चाट न लगे; दिखावा और नुमाइश हो मगर दिखावा और नुमाइश की ख़ातिर काम करने की बीमारी न लगे; मक़बूलियत हो मगर वह मक़सूद न बनने पाए; लोगों की तारीफ़ें हासिल हों मगर उसको हासिल करने की फ़िक्र या उसकी परवाह न हो। दिखावे की पैदाइश की वजहें और असबाब चारों तरफ़ से घेरे हुए हों, मगर दिखावे से दामन बचा रहे। इसके लिए बड़ी कोशिश, बड़ी तवज्जोह और बड़ी मेहनत की ज़रूरत है। एक ज़रा-सी सुस्ती और लापरवाही भी इस मामले में दिखावे के कीटाणुओं को घुस आने का रास्ता दे सकती है।

इससे बचने के लिए व्यक्तिगत कोशिश भी होनी चाहिए और इज्तिमाई कोशिश भी। व्यक्तिगत कोशिश का तरीक़ा यह है कि हर शख़्स कुछ-न-कुछ

ऐसे नेक कामों को अपने ऊपर लाज़िम कर ले जो ज़्यादा-से-ज़्यादा छिपाकर किए जाएँ और हमेशा अपने नफ़्स का जाइज़ा लेकर देखता रहे कि उसे ज़्यादा दिलचस्पी उन छिपी हुई नेकियों में महसूस होती है या उन नेकियों में जो लोगों के सामने आनेवाली हों। अगर दूसरी सूरत हो तो आदमी को फ़ौरन ख़बरदार हो जाना चाहिए कि दिखावा उसके अन्दर घर कर रहा है और अल्लाह से पनाह माँगते हुए पूरी क़ुव्वते-इरादी (इच्छा-शक्ति) के साथ नफ़्स की इस कैफ़ियत को बदलने की कोशिश करनी चाहिए।

इज्तिमाई कोशिश की सूरत यह है कि जमाअत अपने दायरे में दिखावे के रुझानों को कभी पनपने न दे। अपने कामों में एलान और इज़हार को बस हक़ीक़ी ज़रूरत तक महदूद रखे, नुमाइश के शौक़ का मामूली-सा असर भी जहाँ महसूस हो उसको फ़ौरन रोका जाए। जमाअती मशवरों और बातचीत में यह बात कभी इशारों और किनायों में भी बरदाश्त न की जाए कि फ़ुलाँ काम इसलिए करना चाहिए कि वह मक़बूलियत का ज़रिआ है और फ़ुलाँ काम इसलिए न करना चाहिए कि उसे लोग पसन्द नहीं करते। जमाअत का अन्दरूनी माहौल ऐसा होना चाहिए कि वह लोगों की तारीफ़ या मलामत (निन्दा) दोनों से बेनियाज़ होकर काम करने की ज़हनियत पैदा करे और इस ज़हनियत की परवरिश न करे जो मलामत से दिल शिकस्ता (हतोत्साहित) हो और तारीफ़ से ग़िज़ा (अर्थात् ताक़त) पाए। इसके बावुजूद अगर कुछ लोग जमाअत में ऐसे पाए जाएँ जिनमें दिखावे की बू महसूस हो तो उनकी हिम्मत बढ़ाने के बजाए उनके इलाज की फ़िक्र की जानी चाहिए।

वह बात जो सीधे तौर पर किरदार पर असर डालती है

तीसरा बुनियादी ऐब नीयत का खोट है। जिसपर किसी ख़ैर की इमारत क़ायम नहीं हो सकती। ख़ैर (भलाई) का काम सिर्फ़ उस ख़ालिस नीयत ही से हो सकता है कि दुनिया में भलाई फैले और हम इसके लिए कोशिश करके अल्लाह के यहाँ कामयाब हों। इस नीयत के साथ अपनी कोई ज़ाती या गरोही ग़रज़ शामिल न होनी चाहिए, अपना कोई दुनियवी फ़ायदा पेशे-नज़र न होना चाहिए, यहाँ तक कि किसी बहाने के साथ भी नेकी के इस

मक़सद के साथ अपने लिए किसी फ़ायदे की तलब या उम्मीद की लाग लगी न रहनी चाहिए। ऐसा हर ऐब न सिर्फ़ यह कि अल्लाह के यहाँ आदमी के अज्र को बरबाद कर देगा। बल्कि दुनिया में भी इस गन्दगी को लिए हुए कोई सही काम न हो सकेगा। नीयत की ख़राबी लाज़िमी तौर पर किरदार पर असर डालेगी और किरदार की ख़राबी के साथ इस जिद्दोजुहद में कामयाब होना मुमकिन नहीं है जिसका असूल मक़सद बुराई को मिटाकर भलाई को क़ायम करना है।

यहाँ फिर वही मुश्किल पेश आती है जिस तरफ़ हम ऊपर इशारा कर चुके हैं। जुज़्वी (आंशिक) भलाइयों के लिए काम करने की सूरत में नीयत को इस खोट से पाक रखना कुछ ज़्यादा मुश्किल नहीं है। थोड़ा-सा अल्लाह से ताल्लुक़ और सच्चा जज़बा भी इसके लिए काफ़ी हो सकता है, मगर जिन लोगों की नज़रों के सामने यह बात हो कि एक पूरे देश की व्यवस्था की इस्लाह और सुधार किया जाए और उसे मजमूई हैसियत से उन बुनियादों पर ढाला जाए जो हमारे पालनहार ख़ुदा ने हमें दी हैं, वे अपने मक़सद को हासिल करने के लिए सिर्फ़ फ़िक्र की तामीर या सिर्फ़ तबलीग़ और नसीहत या सिर्फ़ अख़लाक़ में सुधार की कोशिशों पर बस नहीं कर सकते। बल्कि इसके साथ-साथ उन्हें यक़ीनन देश के सियासी निज़ाम का रुख़ भी अपने मक़सद की तरफ़ मोड़ने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जिद्दोजुहद करनी पड़ती है और राजनीतिक व्यवस्था की तब्दीली लाज़िमी तौर पर इस बात को अपने अन्दर रखती है कि जो लोग इस बदलाव के लिए कोशिशें कर रहे हों, हुकूमत या तो सीधे तौर पर उनके हाथ में आए या किसी ऐसे गरोह के हाथ में जाए जिसे उनकी ताईद और पुस्तपनाही हासिल हो। दोनों सूरतों में से चाहे कोई सूरत भी हो, इक्तिदार (सत्ता) का तसव्वुर राजनीतिक व्यवस्था के बदलने से जुदा नहीं हो सकता। अब यह दरिया की गहराई में रहकर दामन तर न होने देने का मामला है कि एक जमाअत यह काम करे और फिर भी उसके लोगों की व्यक्तिगत नीयतों और पूरी जमाअत की मजमूई नीयत को 'अपने लिए सत्ता की चाहत' का दाग़ न लगने पाए। यह चीज़ नफ़्स की बड़ी ही मशक़्क़त और दिल व रूह का तज़किया चाहती है। इस मामले में

सही नुक़्ता-ए-नज़र पैदा करने के लिए दो एक जैसी चीज़ों का अस्ली फ़र्क़ अच्छी तरह ज़हन में बैठ जाना चाहिए। यह बात तो ज़ाहिर है कि मजमूई निज़ामे-ज़िन्दगी की तब्दीली चाहनेवाला दूसरी तब्दीलियों के साथ सियासी निज़ाम की तब्दीली चाहने से किसी तरह नज़र नहीं फेर सकता और यह भी ज़ाहिर है कि सियासी निज़ाम की तब्दीली आप-से-आप इस बात का तक़ाज़ा करती है कि इक़्तिदार उन लोगों की तरफ़ या उनकी पसन्द के लोगों की तरफ़ मुन्तक़िल हो जो इस तब्दीली के ख़ाहिशमन्द हों। मगर फ़र्क़ और बहुत बड़ा फ़र्क़ है, अपने लिए इक्तिदार चाहने और अपने उसूल और उद्देश्य के लिए इक्तिदार चाहने में। उसूल का इक़्तिदार चाहे अमली तौर पर उसूलों के अलमबरदारों के ही हाथों में हो "फिर भी उसूल का इक्तिदार" चाहना और उसके अलमबरदारों का अपने लिए इक्तिदार चाहना, वास्तव में दो अलग-अलग चीज़ें हैं जिनमें रूह और जौहर का बहुत बड़ा फ़र्क़ है। नीयत का खोट दूसरी चीज़ में है न कि पहली चीज़ में और 'नफ्स का जिहाद' जिस चीज़ पर केन्द्रित होना चाहिए वह यह है कि पहली चीज़ के लिए सर-धड़ की बाज़ी लगा देने पर भी दूसरी चीज़ का शायबा तक ज़हन में न आने पाए। नबी (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) का नमूना हमारे सामने है। उन्होंने मजमूई निज़ामे-ज़िन्दगी को बदलकर इस्लाम के उसूलों पर क़ायम करने की जिद्दोजुहद की। यह चीज़ सियासी ग़ल्बे और इक़्तिदार का भी तक़ाज़ा करती थी। क्योंकि दीन को पूरी तरह ग़ालिब कर देना इसके बग़ैर मुमकिन न था और अमली तौर पर इस जिद्दोजुहद के नतीजे में इक़्तिदार उनके हाथ में आया भी। लेकिन इसके बावजूद कोई ईमानदार आदमी यह शुबहः तक नहीं कर सकता कि उनकी जिद्दोजुहद का मक़सूद अपना इक़्तिदार था। दूसरी तरफ़ 'अपने' इक़्तिदार की चाह रखनेवालों से तारीख़ (इतिहास) भरी पड़ी है और तारीख़ में उनको ढूँढ़ने की क्या ज़रूरत है, हमारी आँखों के सामने वे दुनिया में मौजूद हैं। अमली तौर पर इक़्तिदार पाने को अगर सिर्फ़ एक वाक़िए की हैसियत से लिया जाए तो दोनों गरोहों में कोई फ़र्क़ नहीं। लेकिन नीयत के लिहाज़ से दोनों में अज़ीमुश्शान फ़र्क़ है और इस फ़र्क़ पर दोनों का किरदार जिद्दोजुहद के दौर का किरदार भी और कामयाबी के दौर का किरदार भी, नाक़ाबिले-इनकार गवाही दे रहा है।

जो लोग सच्चे दिल से इस्लाम के मुताबिक़ ज़िन्दगी के निज़ाम का हमागीर इक़्तिदार चाहते हों उन्हें व्यक्तिगत रूप से भी इस फ़र्क़ को ठीक-ठीक समझकर अपनी नीयत दुरुस्त रखनी चाहिए और उनकी जमाअत को मजमूई तौर पर भी इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि 'अपना इक़्तिदार चाहने' की नीयत किसी शक्ल में भी उसके दायरे में जगह न पा सके।

बज़ाहिर एक मासूम नौइयत की कमज़ोरी

फिर बुराइयों का एक पूरा ख़ानदान इस कमज़ोरी से जन्म लेता है, जिसके लिए निहायत मुनासिब नाम 'मिज़ाज की बेएतिदाली' (असन्तुलन) है। नफ़्सानियत के मुक़ाबले में यह एक मासूम नौइयत की कमज़ोरी है, क्योंकि इसमें किसी बदनीयती, किसी बुरे जज़्बे, किसी नापाक ख़ाहिश का दख़ल नहीं होता। लेकिन ख़राबी पैदा करने की क़ाबिलियत के लिहाज़ से देखा जाए तो यह नफ़्सानियत के बाद दूसरे नम्बर पर आती है, बल्कि कभी-कभी इसके असरात और नतीजे उतने ही ख़राब होते हैं जितने नफ़्सानियत के असरात और नतीजे। बेएतिदाली का फ़ितरी नतीजा नज़र और फ़िक्र की बेएतिदाली और अमल और कोशिश की बेएतिदाली है और यह चीज़ ज़िन्दगी की हक़ीक़तों से सीधे तौर पर टकराती है। नतीजे के एतिबार से बेएतिदाली का एक नुक़सान यह भी है कि वह आमतौर से नाकामी का कारण होती है जो उस जमाअत के लिए भी घातक ज़हर का हुक्म रखती है, जो इज्तिमाई इस्लाह और तामीर का कोई प्रोग्राम लेकर उठी हो।

मिज़ाज की बेएतिदाली (स्वभाव के असन्तुलन) का सबसे पहला मज़हर (प्रदर्शन) इनसान के ज़ेहन का एकरुख़ापन है। इस कैफ़ियत में मुब्तला होकर आदमी आमतौर से हर चीज़ का एक रुख़ देखता है। दूसरा रुख़ नहीं देखता। हर मामले में एक पहलू का लिहाज़ करता है, दूसरे किसी पहलू का लिहाज़ नहीं करता। एक दिशा जिसमें उसका ज़ेहन एक बार चल पड़ता है उसी की तरफ़ वह बढ़ता चला जाता है। दूसरी दिशाओं की ओर तवज्जोह करने के लिए तैयार नहीं होता। उससे मामलों को समझने में लगातार एक ख़ास तरह का असन्तुलन ज़ाहिर होता है। राय क़ायम करने

में भी वह एक ही तरफ़ झुकता है। जिस चीज़ को अहम समझ लेता है बस उसी को पकड़ लेता है। दूसरी वैसी ही अहम चीज़ें, बल्कि उससे भी ज़्यादा अहम चीज़ें उसके नज़दीक बेहक़ीक़त हो जाती हैं। जिस चीज़ को बुरा समझ लेता है उसी के पीछे पड़ जाता है। दूसरी वैसी ही बल्कि उससे ज़्यादा बड़ी बुराइयाँ उसके नज़दीक तवज्जोह की क़ाबिल नहीं होतीं। उसूलियत (उसूल पर चलने की पॉलिसी) इख़्तियार करता है तो जुमूद (जड़ता) की हद तक उसूलपरस्ती में शिद्दत दिखाने लगता है, काम के अमली तक़ाज़ों की कोई परवाह नहीं करता। अमलियत की तरफ़ झुकता है तो बेउसूली की हद तक अमली बन जाता है और कामयाबी को मक़सूद बनाकर उसके लिए हर क़िस्म के संसाधन इस्तेमाल कर डालना चाहता है।

यह कैफ़ियत अगर इस हद तक रुक जाए तो आगे बढ़कर यह सख़्त इन्तिहापसन्दी की शक्ल इख़्तियार कर लेती है। फिर आदमी अपनी राय पर ज़रूरत से ज़्यादा हठ करने लगता है। राय के इख़्तिलाफ़ में शिद्दत बरतने लगता है। दूसरों के नुक़्ता-ए-नज़र को इनसाफ़ के साथ न देखता है, न समझने की कोशिश करता है। बल्कि हर मुख़ालिफ़ राय को बद से बदतर मानी पहनाकर ठुकराना और रुसवा करना चाहता है। यह चीज़ दिन-प्रति-दिन उसे दूसरों के लिए और दूसरों को उसके लिए नाक़ाबिले-बरदाश्त बनाती चली जाती है।

इस जगह पर भी बेएतिदाली रुक जाए तो ख़ैरियत है लेकिन अगर इसे ख़ूबी समझकर इसे और ज़्यादा पाला जाए तो फिर मामला बदमिज़ाजी, चिड़चिड़ेपन, ज़बान की तेज़ी, दूसरों की नीयतों पर शक और हमलों तक पहुँच जाता है जो किसी इज्तिमाई ज़िन्दगी में भी निभनेवाली चीज़ नहीं है।

एक आदमी यह रविश इख़्तियार करे तो ज़्यादा-से-ज़्यादा इतना ही होगा कि वह अकेला जमाअत से कट जाएगा और इस मक़सद की ख़िदमत से महरूम रह जाएगा जिसकी ख़ातिर वह जमाअत से वाबस्ता हुआ था। इससे कोई इज्तिमाई नुक़सान न होगा। मगर जब किसी इज्तिमाई हैयत में बहुत-से एक जैसे ज़ेहन और असन्तुलित मिज़ाज जमा हो जाएँ तो फिर एक-एक क़िस्म का असन्तुलन एक-एक टोली की शक्ल इख़्तियार करने

लगता है। एक इन्तिहा के जवाब में दूसरी इन्तिहा पैदा होती है। इख़्तिलाफ़ात सख़्त से सख़्ततर होते जाते हैं। फूट पड़ती है। धड़ेबन्दी होती है और इस कशमकश में वह ख़राब होकर रहता है जिसे बनाने के लिए बड़ी नेकनीयती के साथ लोग जमा हुए थे।

हक़ीक़त यह है कि जो काम निजी कोशिशों से करने के नहीं होते बल्कि जिनकी नौइयत ही इज्तिमाई होती है, उन्हें अंजाम देने के लिए बहरहाल बहुत-से लोगों से मिलकर काम करना होता है। हर एक को अपनी बात समझानी और दूसरों की बातें समझनी होती हैं। तबीअतों (स्वभाव) का इख़्तिलाफ़ क़ाबीलियतों का इख़्तिलाफ़, व्यक्तिगत ख़ूबियों का इख़्तिलाफ़ अपनी जगह रहता है। इसके बावजूद सबको आपस में मुवाफ़क़त (एक राय होने) का एक ताल्लुक़ पैदा करना होता है जिसके बग़ैर कोई सहयोग सम्भव नहीं होता। इस मेलजोल और मुवाफ़क़त के लिए नर्मी और इन्किसार (विनम्रता और शालीनता) लाज़िमी है। यह नर्मी और इन्किसार सिर्फ़ संतुलित स्वभाव के लोगों में ही हो सकता है जिनके विचार भी संतुलित हों और स्वभाव भी। असंतुलित स्वभाव के लोग जमा हो भी जाएँ तो ज़्यादा देर तक जमा नहीं रह सकते। उनकी एकता फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी और जिन टुकड़ियों में बँटकर एक-एक प्रकार के असन्तुलन के शिकार रोगी जमा होंगे, उनमें फिर फूट पैदा होगी। यहाँ तक कि आख़िरकार एक-एक इमाम मुक़्तदियों के बग़ैर ही खड़ा नज़र आएगा।

जिन लोगों को इस्लाम के लिए काम करना हो और जिन्हें जमा करनेवाली चीज़ इस्लाम के उसूल पर ज़िन्दगी के निज़ाम की इस्लाह और तामीर करने का जज़बा और वलवला हो, उन्हें अपना मुहास्बा करके इस बेएतिदाली (असन्तुलन) से ख़ुद भी बचना चाहिए और उनकी जमाअत को भी यह फ़िक्र होनी चाहिए कि उसके दायरे में यह रोग पनपने न पाए। इस बारे में अल्लाह की किताब और रसूल की सुन्नत की वह हिदायत उनके सामने रहनी चाहिए जो इन्तिहापसन्दी और शिद्दत से मना करती है। क़ुरआन जिस चीज़ को किताबवालों की बुनियादी ग़लती ठहराता है वह दीन में हद से बढ़ना है।

क़ुरआन में कहा गया है कि, 'ऐ किताबवालों दीन में हद से आगे न बढ़ो।' और इससे बचने की ताकीद नबी (सल्ल०) अपने पैरोकारों को इन अलफ़ाज़ में फ़रमाते हैं–

"ख़बरदार! इन्तिहापसन्दी में न पड़ना क्योंकि तुमसे पहले लोग दीन में इंतिहापसन्दी अपनाकर ही तबाह हुए हैं।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

इब्ने-मसऊद (रज़ि०) की रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने एक तक़रीर में तीन बार फ़रमाया–

"बरबाद हो गए शिद्दत इख़्तियार करनेवाले और हद से बढ़नेवाले।"

(हदीस : मुस्लिम)

इस पैग़ाम के अलमबरदारों को जिस तरीक़े पर काम करना चाहिए वह उसके पैग़ाम पहुँचानेवाले पहले अलमबरदार हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने यह सिखाया है–

"आसानी पैदा करो तंगी पैदा न करो, ख़ुशख़बरी दो, नफ़रत न दिलाओ।" (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

"अल्लाह नर्म मिज़ाज है, हर मामले में नर्म रवैये को पसन्द करता है।" (हदीस : मुस्लिम)

"जो नर्मी से महरूम हुआ वह भलाई से बिलकुल महरूम हो गया।" (हदीस : मुस्लिम)

इन जामेअ (सारगर्भित) हिदायतों को नज़र के सामने रखने के साथ इस्लामी जीवन-व्यवस्था के लिए काम करनेवाले लोग अगर क़ुरआन और सुन्नत से अपने मतलब की चीज़ें छाँटने के बजाए अपने मिज़ाज और नुक़्ता-ए-नज़र को उनके मुताबिक़ ढालने की आदत डालें तो उनके अन्दर आपसे आप वह सन्तुलन और दरमियानारवी और एतिदाल पैदा होता चला जाएगा जो दुनिया के हालात और मामलों को क़ुरआन और सुन्नत के दिए हुए नक़्शे पर दुरुस्त करने के लिए दरकार है।

मिज़ाज में बेएतिदाली (असन्तुलन) से मिलती-जुलती एक और कमज़ोरी भी इनसान में होती है, जिसे 'तंगदिली' के नाम से जाना जाता है, जिसे क़ुरआन में 'शुह्हे-नफ़्स' कहा गया है जिसके बारे में क़ुरआन कहता है कि कामयाबी उसके लिए है जो उससे बच गया और जिसे क़ुरआन तक़वा और एहसान के विपरीत एक ग़लत मैलान ठहराता है। इस रोग में जो व्यक्ति मुब्तला हो वह अपनी ज़िन्दगी के माहौल में दूसरों के लिए कम ही गुंजाइश छोड़ना चाहता है। वह ख़ुद जितना भी फैल जाए अपनी जगह उसे तंग ही नज़र आती है और दूसरे जिस क़द्र भी उसके लिए सिकुड़ जाएँ उसे महसूस होता है कि वे बहुत फैले हुए हैं। अपने लिए वह हर रिआयत चाहता है मगर दूसरों के साथ कोई रिआयत नहीं कर सकता। अपनी ख़ूबियाँ उसके नज़दीक एक सिफ़त होती हैं और दूसरों की ख़ूबियाँ सिर्फ़ एक इत्तिफ़ाक़ी हादसा। अपने ऐब उसकी निगाह में माफ़ी के क़ाबिल होते हैं, मगर दूसरों का कोई ऐब वह माफ़ नहीं कर सकता। अपनी तमाम मुश्किलों को वह मुश्किलें समझता है, मगर दूसरों की मुश्किलें उसकी राय में सिर्फ़ बहाना होती हैं। अपनी कमज़ोरियों के लिए जो अलाउंस और सुविधाएँ वह ख़ुद चाहता है, दूसरों को वह अलाउंस देने के लिए तैयार नहीं होता। दूसरों की मजबूरियों की परवाह किए बग़ैर वह उनसे इन्तिहा दर्जे की माँगें करता है जो ख़ुद अपनी मजबूरियों की सूरत में वह कभी पूरी न करे। अपनी पसन्द और अपना ज़ौक़ वह दूसरों पर ठूँसने की कोशिश करता है। मगर दूसरों की पसन्द और उनके ज़ौक़ का लिहाज़ करना ज़रूरी नहीं समझता। यह चीज़ तरक़्क़ी करती रहे तो आगे चलकर छोटी-छोटी बातों पर ऐब निकालने की शक्ल इख़्तियार करती है। दूसरों की ज़रा-ज़रा सी बातों पर आदमी गिरफ़्त करने लगता है और फिर जवाब में जब उसके अन्दर के ऐब दिखाए और बताए जाते हैं तो बिलबिला उठता है।

इसी तंगदिली की एक शक्ल जल्द नाराज़ हो जाना, नकचढ़ापन और एक-दूसरे को बरदाश्त न करना है। जो इज्तिमाई ज़िन्दगी में उस शख़्स के लिए भी मुसीबत है जो इसमें मुब्तला हो और उन लोगों के लिए भी मुसीबत है जिन्हें ऐसे शख़्स से वास्ता पड़े।

किसी जमाअत के अन्दर इस बीमारी का घुस आना हक़ीक़त में एक ख़तरे की अलामत (लक्षण) है। इज्तिमाई जिद्दोजुहद बहरहाल आपस की उल्फ़त और आपसी सहयोग चाहती है। जिसके बग़ैर चार आदमी भी मिलकर काम नहीं कर सकते। मगर यह तंगदिली उसके एम्कानात (सम्भावनाओं) को कम ही नहीं, कभी-कभी ख़त्म कर देती है। इसका लाज़िमी नतीजा ताल्लुक़ात में कड़वाहट और आपस की नफ़रतें हैं। ये दिलों को फाड़ देनेवाली और साथियों को आपस में उलझा देनेवाली चीज़ है। इस रोग में जो लोग पड़े हुए हों वे आम समाजी ज़िन्दगी के लिए भी नामुनासिब ठहरेंगे। ख़ास तौर पर यह सिफ़त उन औसाफ़ (गुणों) के बिलकुल ही विपरीत है जो इस्लामी ज़िन्दगी को क़ायम करने की जिद्दोजुहद के लिए मतलूब (अभीष्ट) हैं। वह तंगदिली के बजाए कुशादादिली, कंजूसी के बजाए फ़ैयाज़ी (दानशीलता), गिरफ़्त के बजाए माफ़ी और सख़्तगीरी के बजाए सहन चाहती है। इसके लिए हलीम और मुतहम्मिल (सहनशील और बुर्दबार) लोग दरकार हैं। इसका बीड़ा वही लोग उठा सकते हैं जो बड़ा दिल रखते हों, जिनकी सख़्ती अपने लिए और नर्मी दूसरों के लिए हो, जो अपने ऐबों और दूसरों की ख़ूबियों पर निगाह रखें, जो तकलीफ़ देने के बजाए तकलीफ़ सहने के आदी हों और चलतों को गिराने के बजाए गिरतों को थामने का बलबूता रखते हों। जो जमाअत ऐसे लोगों पर बनी होगी वह न सिर्फ़ ख़ुद आपस में मज़बूती के साथ जुड़ी रहेगी बल्कि अपने गिर्दो-पेश के समाज में भी बिखरे हुए अंशों को समेटती और अपने साथ जोड़ती चली जाएगी। इसके विपरीत तंगदिल और थुड़दिले लोगों की भीड़ ख़ुद बिखरेगी और बाहर भी जिस-जिस से उसका वास्ता पड़ेगा उसे नफ़रत दिलाकर अपने से दूर भगा देगी।

●●